मध्यप्रदेश/छत्तीसगढ़

RNI No.: MPBIL/2001/05256
DAVP Code : 128101
Postal Registration No. : Bhopal/MP/581/2021-2023

Publish Date : Every Month Dt. 05
Posting Date : Every Month Dt. 15
Rs. 10/-

जगत विज़न

| वर्ष : 27 | अंक : 03 |

| नवंबर 2026 |



चरमराई मध्यप्रदेश की कानून-व्यवस्था

आमजन असुरक्षित, अपराधियों के हौसले बुलंद



प्रेरणा स्त्रोत : स्व. श्री जगत पाठक

निर्भीक पत्रकारिता

संपादक विजया पाठक
कार्यकारी संपादक समता पाठक
पश्चिम बंगाल ब्यूरो चीफ अमित राय

सम्पादकीय एवं विज्ञापन कार्यालय
भोपाल
एफ-116/17, शिवाजी नगर, भोपाल
मो. 98260-64596, मो. 9893014600
फोन : 0755-4299165 म.प्र. स्वत्वाधिकारी,

छत्तीसगढ़
4-विनायका विहार, रिंग रोड, रायपुर

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक
विजया पाठक द्वारा जगत प्रिंटर्स पब्लिशर्स, खसरा नं. 1/1/6 अमरावद खुर्द बरखेड़ा पठानी, फंदा भोपाल से मुद्रित एवं एफ-116/17, शिवाजी नगर, भोपाल म.प्र. से प्रकाशित संपादक विजया पाठक। समस्त विवादों का कार्यक्षेत्र भोपाल सत्र-न्यायालय रहेगा। पत्रिका में प्रकाशित किये जाने वाले संपूर्ण आलेख एवं सामग्री की जिम्मेदारी लेखक एवं संपादक की होगी।

E-mail : jagat.vision@gmail.com
Website: www.jagatvision.co.in



(पृष्ठ क्र.-6)

- शराब, रेत और खनन के अवैध कारोबार पर लगाम लगाने में मोहन सरकार हुई नाकाम 25
- राहुल गांधी ने भरी सियासी हुंकार 28
- मुख्यमंत्री साय सरकार ने छत्तीसगढ़ में किसान कल्याण को दी नई गति 34
- योगी को देना होगा फ्रीहैंड 39
- आंदोलन के बदलते स्वरूप 44
- मतांतरित मुस्लिमों को नहीं मिलेगा आरक्षण का लाभ 48
- गर्म होते महासागर, बदलती जलवायु 51
- वैश्विक ऊर्जा संकट? पेट्रोल-डीजल निर्यात शुल्क में बड़ा उलटफेर 55
- चुनौतियों के बीच नई आर्थिक शक्ति बनते एफटीए 59
- Rajasthan's 'Sarpanch Pati' problem 62


कमाल है! इतने बोझ के बाद भी शान से चल रहे हो!
!?
!?
झूठे साक्ष्य
इंटेलिजेंस फेलिया
जज के सामने गलत दस्तावेज
गलत तथ्य
अफीम की खेती
विजयाः)

सत्ता का गणित, लोकतंत्र की परीक्षा और क्षेत्रीय शांति की चुनौती

इजराइल का ताजा चुनाव केवल सत्ता परिवर्तन या राजनीतिक दलों के बीच प्रतिस्पर्धा का मामला नहीं है, बल्कि यह देश की लोकतांत्रिक व्यवस्था, राष्ट्रीय सुरक्षा और पश्चिम एशिया के भविष्य से जुड़ा महत्वपूर्ण घटनाक्रम है। 27 अक्टूबर 2026 को हुए संसदीय चुनाव में प्रधानमंत्री बेंजामिन नेतन्याहू के नेतृत्व वाले गठबंधन को स्पष्ट बहुमत नहीं मिला। दूसरी ओर विपक्षी गठबंधन भी सरकार बनाने के लिए जरूरी आंकड़े तक नहीं पहुंच पाया। परिणामस्वरूप इजराइल की राजनीति एक बार फिर अनिश्चितता के दौर में प्रवेश कर गई है। इजराइल की 120 सदस्यीय संसद नेसेट में सरकार बनाने के लिए कम से कम 61 सदस्यों का समर्थन आवश्यक है। शुरुआती चुनावी अनुमानों के अनुसार नेतन्याहू की लिकुड पार्टी को 27 सीटें मिली हैं और उनके सहयोगी दलों सहित गठबंधन का आंकड़ा 53 तक पहुंचा है। विपक्षी नेता गादी आइजेनकोट के नेतृत्व वाले खेमे को 48 सीटें मिलने का अनुमान है, जबकि अरब नेतृत्व वाले दलों ने 19 सीटें हासिल की हैं। इस प्रकार किसी भी खेमे के पास अपने दम पर सरकार बनाने लायक संख्या नहीं है। अंतिम परिणामों की घोषणा के बाद गठबंधन की राजनीति और अधिक महत्वपूर्ण हो जाएगी। इस चुनाव का सबसे बड़ा संदेश यह है कि इजराइल का मतदाता अब केवल सुरक्षा और सैन्य शक्ति के आधार पर अपना राजनीतिक निर्णय नहीं कर रहा, बल्कि वह शासन की जवाबदेही, युद्ध की कीमत, आर्थिक स्थिति और देश के भविष्य को लेकर भी सवाल उठा रहा है। पिछले कुछ वर्षों में इजराइल ने गाजा युद्ध, हमास के साथ संघर्ष, ईरान के साथ तनाव और क्षेत्रीय अस्थिरता का सामना किया है। इन परिस्थितियों ने देश की राजनीति और समाज दोनों को प्रभावित किया है।

प्रधानमंत्री नेतन्याहू लंबे समय से इजराइल की राजनीति के केंद्रीय चेहरे रहे हैं। उनके समर्थक उन्हें राष्ट्रीय सुरक्षा और मजबूत नेतृत्व का प्रतीक मानते हैं, जबकि विरोधी दल उनके शासन, युद्ध संबंधी फैसलों और राजनीतिक जवाबदेही पर सवाल उठाते रहे हैं। ऐसे में चुनाव परिणामों ने यह स्पष्ट कर दिया है कि इजराइली समाज में राजनीतिक मतभेद गहरे हैं। किसी एक राजनीतिक धड़े के पक्ष में निर्णायक जनादेश का अभाव इसी विभाजन को दर्शाता है। इस चुनाव में अरब नेतृत्व वाले दलों का 19 सीटों तक पहुंचना भी उल्लेखनीय है। यह इजराइल की संसदीय राजनीति में अरब नागरिकों की भागीदारी और प्रतिनिधित्व के बढ़ते महत्व को सामने लाता है। हालांकि इन दलों की भूमिका सरकार गठन में कितनी प्रभावी होगी, यह आने वाले दिनों की राजनीतिक बातचीत पर निर्भर करेगा। इजराइल की राजनीति में गठबंधन बनाना केवल सीटों का जोड़ नहीं है, बल्कि विचारधाराओं, सुरक्षा संबंधी प्राथमिकताओं और राजनीतिक शर्तों के बीच संतुलन स्थापित करने की प्रक्रिया भी है। इजराइल में राष्ट्रपति की भूमिका भी इस समय महत्वपूर्ण होगी। राष्ट्रपति इसाक हर्जोग को अंतिम चुनाव परिणामों के बाद राजनीतिक दलों से विचार-विमर्श कर उस सांसद को सरकार बनाने का अवसर देना है, जिसके पास बहुमत जुटाने की बेहतर संभावना होगी। इसके लिए संवैधानिक प्रक्रिया के तहत समय निर्धारित है। यदि कोई भी नेता सरकार बनाने में सफल नहीं होता है तो देश को दोबारा चुनाव की स्थिति का सामना करना पड़ सकता है।

भारत के दृष्टिकोण से भी इजराइल के राजनीतिक घटनाक्रम का विशेष महत्व है। दोनों देशों के बीच रक्षा, कृषि, जल प्रबंधन, विज्ञान, तकनीक और व्यापार के क्षेत्रों में महत्वपूर्ण सहयोग है। भारत की विदेश नीति का आधार रणनीतिक स्वायत्तता, राष्ट्रीय हित और क्षेत्रीय शांति है। इसलिए इजराइल में बनने वाली नई सरकार के साथ इन संबंधों की निरंतरता महत्वपूर्ण होगी। साथ ही पश्चिम एशिया में स्थिरता भारत की ऊर्जा सुरक्षा और वहां रहने वाले लाखों भारतीयों के हितों से भी जुड़ी है। नई सरकार के सामने सबसे बड़ी चुनौती केवल सत्ता का स्थायित्व नहीं, बल्कि युद्ध और शांति के बीच संतुलन स्थापित करना होगा। गाजा में मानवीय संकट, बंधकों का प्रश्न, फिलिस्तीन के भविष्य और ईरान के साथ तनाव जैसे मुद्दों पर स्पष्ट और दूरगामी नीति की आवश्यकता है। सैन्य शक्ति किसी देश की सुरक्षा का महत्वपूर्ण आधार हो सकती है, लेकिन स्थायी शांति के लिए राजनीतिक समाधान और कूटनीतिक संवाद भी उतने ही जरूरी हैं।

विजया पाठक



चरमराई मध्यप्रदेश की कानून-व्यवस्था

आमजन असुरक्षित, अपराधियों के हौंसले बुलंद

मध्यप्रदेश में कानून-व्यवस्था की स्थिति लगातार गंभीर सवालों के घेरे में आती जा रही है। प्रदेश में अपराध की बढ़ती घटनाएं, महिलाओं के खिलाफ अपराध, हत्या, लूट, अपहरण, दुष्कर्म और खुलेआम हो रही आपराधिक वारदातें इस बात का संकेत दे रही हैं कि अपराधियों के मन से कानून का भय कमजोर पड़ता जा रहा है। हालात ऐसे बनते जा रहे हैं कि आम आदमी से लेकर सरकारी अधिकारी और जनप्रतिनिधि तक अपनी सुरक्षा को लेकर चिंतित नजर आने लगे हैं। जिस प्रदेश में कभी कानून-व्यवस्था को सुशासन का आधार माना जाता था, वहां आज सुरक्षा व्यवस्था की प्रभावशीलता पर गंभीर सवाल उठ रहे हैं। सबसे चिंताजनक स्थिति महिलाओं और बच्चियों की सुरक्षा को लेकर है। प्रदेश के अलग-अलग हिस्सों से सामने आने वाली दुष्कर्म, छेड़छाड़, अपहरण और हत्या की घटनाएं समाज को झकझोर रही हैं। सवाल यह है कि आखिर बेटियों की सुरक्षा के लिए सरकार और पुलिस प्रशासन की ओर से किए जा रहे दावों का जमीन पर कितना असर दिखाई दे रहा है? यदि अपराध होने के बाद पुलिस सक्रिय होती है, आरोपियों की गिरफ्तारी करती है और सरकार कड़ी कार्रवाई का भरोसा दिलाती है, तो फिर अपराधों पर प्रभावी अंकुश क्यों नहीं लग पा रहा है? प्रदेश में अपराध का स्वरूप भी लगातार चुनौतीपूर्ण होता जा रहा है। संगठित अपराध, साइबर ठगी, अवैध गतिविधियां और आपसी रंजिश में होने वाली हिंसक घटनाएं पुलिस प्रशासन के सामने नई चुनौतियां खड़ी कर रही हैं। कई मामलों में अपराधियों के राजनीतिक संरक्षण, प्रभावशाली लोगों से संबंध और स्थानीय स्तर पर पुलिस की कथित निष्क्रियता को लेकर भी सवाल उठते रहे हैं। ऐसे आरोपों की निष्पक्ष जांच और जवाबदेही तय करना जरूरी है। इस पूरे परिदृश्य में सबसे बड़ा सवाल पुलिस प्रशासन की कार्यप्रणाली और सरकार की जवाबदेही का है। आखिर अपराध होने के बाद कार्रवाई करना ही कानून-व्यवस्था का पैमाना है या अपराध होने से पहले उसे रोकना भी सरकार की जिम्मेदारी है? थानों में शिकायतों पर त्वरित कार्रवाई, संवेदनशील क्षेत्रों में पुलिस की मौजूदगी, महिला सुरक्षा, अपराधियों पर प्रभावी निगरानी और लंबित मामलों का समयबद्ध निपटारा किसी भी मजबूत कानून-व्यवस्था की बुनियादी शर्तें हैं। मुख्यमंत्री डॉ. मोहन यादव के नेतृत्व वाली सरकार के सामने अब सबसे बड़ी चुनौती प्रदेश में कानून का इकबाल कायम करने की है। केवल सख्त कार्रवाई के बयान और अपराधियों को चेतावनी देने से जनता का भरोसा वापस नहीं आएगा। इसके लिए जरूरी है कि अपराध के वास्तविक आंकड़ों को सार्वजनिक किया जाए, पुलिस व्यवस्था की कमियों की पहचान हो और दोषी अधिकारियों की जवाबदेही तय की जाए। मध्यप्रदेश की जनता को भाषणों और दावों से अधिक सुरक्षित माहौल चाहिए। उसे ऐसा प्रदेश चाहिए जहां महिलाएं बिना भय के घर से निकल सकें, व्यापारी निडर होकर कारोबार कर सकें, अधिकारी ईमानदारी से काम कर सकें और आम नागरिक को न्याय के लिए दर-दर न भटकना पड़े। आज सवाल सिर्फ बढ़ते अपराधों का नहीं, बल्कि शासन की विश्वसनीयता और जनता के सुरक्षा संबंधी भरोसे का भी है। यदि समय रहते ठोस कदम नहीं उठाए गए तो कानून-व्यवस्था पर उठ रहे सवाल सरकार के लिए बड़ी राजनीतिक और प्रशासनिक चुनौती बन सकते हैं। मध्यप्रदेश में कानून-व्यवस्था की स्थिति का आकलन केवल सरकार के दावों से नहीं, बल्कि अपराध के आंकड़ों से भी होना चाहिए। छह महीने में 3,525 दुष्कर्म और 835 हत्याओं के मामले ऐसे सवाल खड़े करते हैं, जिनका जवाब सरकार और पुलिस प्रशासन को देना होगा। आखिर अपराधियों में कानून का भय क्यों कमजोर पड़ रहा है और आम नागरिक की सुरक्षा सुनिश्चित करने की जिम्मेदारी किसकी है?

विजया पाठक

मध्यप्रदेश में कानून-व्यवस्था का सवाल केवल अपराधों की संख्या तक सीमित नहीं है। यह आम नागरिक की सुरक्षा, महिलाओं के सम्मान, बच्चों के संरक्षण, व्यापारियों के भरोसे और पुलिस-प्रशासन की जवाबदेही से जुड़ा विषय है। किसी भी राज्य की सरकार के लिए कानून-व्यवस्था बनाए रखना सबसे महत्वपूर्ण जिम्मेदारियों में से एक है। जनता सरकार से अपेक्षा करती है कि वह सुरक्षित वातावरण उपलब्ध कराए, अपराधियों के खिलाफ समय पर कार्रवाई करे और पीड़ितों को न्याय दिलाने के लिए प्रभावी व्यवस्था सुनिश्चित करे। ऐसे में जब भी राज्य में गंभीर अपराधों की खबरें सामने आती हैं, तो स्वाभाविक रूप से पुलिस की कार्यप्रणाली और प्रशासनिक व्यवस्था पर सवाल उठने लगते हैं। मध्यप्रदेश में भी कानून-व्यवस्था को लेकर समय-समय पर राजनीतिक बयानबाजी, जन असंतोष और प्रशासनिक कार्रवाई की जरूरत पर बहस होती रही है।

> मध्यप्रदेश में भी कानून-व्यवस्था को लेकर समय-समय पर राजनीतिक बयानबाजी, जन असंतोष और प्रशासनिक कार्रवाई की जरूरत पर बहस होती रही है।

सरकार के सामने जवाबदेही की चुनौती

मुख्यमंत्री और गृह विभाग की जिम्मेदारी केवल अपराध होने के बाद प्रतिक्रिया देने तक सीमित नहीं है। उन्हें ऐसी व्यवस्था विकसित करनी चाहिए, जिसमें अपराध की रोकथाम, संवेदनशील क्षेत्रों की पहचान, पुलिस संसाधनों का उचित उपयोग





और जांच की गुणवत्ता पर लगातार निगरानी हो। इसके लिए जिला स्तर पर अपराध संबंधी आंकड़ों की नियमित समीक्षा, शिकायतों के निपटारे की समयसीमा, पुलिस थानों के प्रदर्शन का पारदर्शी आकलन और लापरवाही के

मध्यप्रदेश में उच्च अधिकारी भी महफूज नहीं, लगातार सामने आ रही घटनाओं ने कानून-व्यवस्था पर खड़े किए सवाल

मध्यप्रदेश में कानून-व्यवस्था को लेकर बहस अब केवल आम नागरिकों की सुरक्षा तक सीमित नहीं रह गई है। प्रदेश में वरिष्ठ पुलिस अधिकारियों को धमकी मिलने, महिला अधिकारियों के साथ कथित दुर्व्यवहार, प्रशासनिक अधिकारियों के साथ टकराव और सेवानिवृत्त आईएएस अधिकारी की हत्या जैसी घटनाओं ने सुरक्षा व्यवस्था की प्रभावशीलता पर गंभीर सवाल खड़े किए हैं। इन घटनाओं का महत्व इसलिए भी बढ़ जाता है, क्योंकि जिन अधिकारियों पर कानून लागू कराने और प्रशासनिक व्यवस्था संचालित करने की जिम्मेदारी है, उन्हें ही सुरक्षा संबंधी चिंताओं का सामना करना पड़ रहा है। सवाल यह है कि क्या प्रदेश में कानून का भय बनाए रखने वाली व्यवस्था अपेक्षित प्रभावशीलता के साथ काम कर रही है? क्या सरकारी पदों पर बैठे अधिकारियों को स्वतंत्र रूप से अपने कर्तव्यों का निर्वहन करने के लिए पर्याप्त सुरक्षा और प्रशासनिक समर्थन मिल रहा है? और यदि वरिष्ठ अधिकारी ही असुरक्षा महसूस करते हैं, तो आम नागरिक पुलिस-प्रशासन से किस तरह के





मामलों में उचित कार्रवाई जरूरी है।

साथ ही, यह भी ध्यान रखना चाहिए कि अपराध दर्ज होने की संख्या बढ़ना हमेशा अपराध बढ़ने का ही प्रमाण नहीं होता, यह शिकायत दर्ज कराने की बेहतर व्यवस्था का संकेत भी हो सकता है। इसलिए आंकड़ों

भरोसे की उम्मीद करे? इन सवालों का उत्तर राजनीतिक आरोप-प्रत्यारोप से नहीं, बल्कि सामने आई घटनाओं, पुलिस की कार्रवाई और प्रशासनिक जवाबदेही की निष्पक्ष पड़ताल से मिलना चाहिए।

भोपाल में सेवानिवृत्त आईएएस अधिकारी की हत्या: 30 सितंबर 2026 को भोपाल में सेवानिवृत्त आईएएस अधिकारी राकेश अग्रवाल अपने निवास पर मृत पाए गए। वह 1982 बैच के आईएएस अधिकारी थे। पुलिस को उनके



केयरटेकर पर संदेह था, जो घटना के बाद लापता बताया गया। यह घटना राजधानी में वरिष्ठ नागरिकों की सुरक्षा और घरों में काम करने वाले कर्मचारियों के सत्यापन जैसे विषयों को सामने लाती है। यह भी ध्यान रखना होगा कि किसी सेवानिवृत्त अधिकारी की हत्या अपने आप में पूरे प्रदेश की कानून-व्यवस्था के बिगड़ने का निर्णायक प्रमाण है।

एडीजी के घर के बाहर हंगामा, सुरक्षा बढ़ाने की मांग: मार्च 2026 में भोपाल में मध्यप्रदेश पुलिस के एडीजी (ट्रेनिंग) राजाबाबू सिंह के निवास के बाहर हुई घटना ने भी ध्यान खींचा। कुछ युवक उनके घर के बाहर पहुंचे। वहां गाली-गलौज और सुरक्षा कर्मी के साथ दुर्व्यवहार की शिकायत सामने आई। एडीजी ने वरिष्ठ पुलिस अधिकारियों को पत्र लिखकर सुरक्षा बढ़ाने का अनुरोध किया।

अलीराजपुर में महिला अधिकारी को धमकी: 22 अप्रैल 2026 को अलीराजपुर के जनपद पंचायत कार्यालय में महिला अधिकारी प्रिया काग के साथ कथित धमकी और दुर्व्यवहार का मामला सामने आया। कैबिनेट मंत्री नागर सिंह चौहान के भाई इंदर सिंह चौहान पर आरोप था कि उन्होंने एक योजना के अंतर्गत अपात्र आवेदनों को अस्वीकार किए जाने के विवाद में महिला अधिकारी को धमकाया और उनका रास्ता रोकने की कोशिश की।

आईएएस अधिकारी और मंत्री के बीच विवाद: अप्रैल 2026 में जबलपुर स्मार्ट सिटी के सीईओ और आईएएस अधिकारी अरविंद शाह तथा लोक निर्माण मंत्री राकेश सिंह के बीच कथित विवाद भी चर्चा में रहा। आईएएस अधिकारी ने मंत्री के आवास पर बुलाए जाने के बाद कथित अभद्र व्यवहार की शिकायत आईएएस एसोसिएशन के समक्ष रखी। दूसरी ओर, मंत्री पक्ष से अधिकारी के व्यवहार को लेकर प्रत्यारोप सामने आए। एसोसिएशन ने मुख्यमंत्री के सामने मामला उठाया और बातचीत के माध्यम से समाधान की कोशिश की गई।

सुरक्षा का भरोसा ही असली कसौटी

की व्याख्या संदर्भ के साथ की जानी चाहिए।

मध्यप्रदेश की कानून-व्यवस्था पर उठते सवालों का जवाब केवल सरकारी बयान,



18 महीने में 461 हमले, 5 पुलिसकर्मियों की मौत

मध्यप्रदेश में कानून-व्यवस्था की चुनौती अब केवल आम नागरिकों की सुरक्षा तक सीमित नहीं रह गई है। प्रदेश में कानून लागू कराने वाले पुलिसकर्मी और प्रशासनिक अधिकारी भी हमलों का सामना कर रहे हैं। सरकारी आंकड़े बताते हैं कि पुलिस बल पर हमले की घटनाएं किस स्तर तक पहुंच चुकी हैं। 5 अगस्त 2025 को मध्यप्रदेश विधानसभा में कांग्रेस विधायक एवं पूर्व गृहमंत्री बाली बच्चन के सवाल के जवाब में मुख्यमंत्री डॉ. मोहन यादव ने जानकारी दी थी कि 1 जनवरी 2024 से 30 जून 2025 के बीच 461 पुलिसकर्मियों पर हमले की घटनाएं, पुलिसकर्मी घायल- 612, पुलिसकर्मियों की मौत 5।

मऊगंज में पुलिस और तहसीलदार पर जानलेवा हमला

15 मार्च 2025 को मऊगंज जिले के गदरा गांव में विवाद सुलझाने पहुंची पुलिस टीम और तहसीलदार पर ग्रामीणों की भीड़ ने लाठी-डंडों, पत्थरों और धारदार हथियारों से हमला कर दिया। एएसआई रामचरण गौतम की मौत हो गई। थाना प्रभारी संदीप भारती घायल हुए। तहसीलदार पानिका घायल हुए। एसडीओपी अंकित सुल्या को भी भीड़ ने घेर लिया।

कटनी और पन्ना में भी पुलिस टीमों पर हमले

23 अक्टूबर 2025 को कटनी और पन्ना जिलों में कुछ ही घंटों के अंतराल में पुलिसकर्मियों पर दो अलग-अलग हमले हुए। कटनी के बाकल थाने में ग्रामीणों ने पुलिसकर्मियों पर हमला किया, जबकि पन्ना जिले के गजना धरमपुर गांव में गिरफ्तारी के लिए पहुंची पुलिस टीम को भीड़ ने निशाना बनाया। दोनों घटनाओं में चार पुलिसकर्मी घायल हुए।

राजनीतिक आरोप या किसी एक घटना पर की गई कार्रवाई नहीं हो सकती। वास्तविक जवाब उस व्यवस्था से मिलेगा, जिसमें नागरिक सुरक्षित महसूस करें, शिकायतों पर निष्पक्ष सुनवाई हो, अपराधियों के खिलाफ कानून के अनुसार कार्रवाई हो और निर्दोष

शराब माफिया के दुस्साहस की कीमत जान देकर चुकाई टीआई ने

मध्यप्रदेश में अवैध शराब का कारोबार किस तरह सरकारी व्यवस्था और कानून को चुनौती दे रहा है, इसका गंभीर उदाहरण देवास जिले के खातेगांव में सामने आया है। अवैध शराब की तस्करी रोकने पहुंचे थाना प्रभारी दिलीप कुमार पुरी को अपनी जान गंवानी पड़ी। पुलिस की कार्रवाई के दौरान शराब से भरे संदिग्ध आयशर वाहन ने उन्हें कुचल दिया। यह घटना महज एक पुलिस अधिकारी की मौत नहीं, बल्कि प्रदेश में अवैध शराब के कारोबार, उसकी आपूर्ति व्यवस्था और निगरानी तंत्र पर गंभीर सवाल खड़े करती है। 2 नवंबर की रात करीब डेढ़ बजे टीआई दिलीप पुरी को अवैध शराब परिवहन की सूचना मिली थी। वे अपनी टीम के साथ इंदौर-बैतूल हाईवे पर पहुंचे। पुलिस के मुताबिक संदिग्ध वाहन को रोकने का प्रयास किया गया। इसी दौरान चालक ने वाहन आगे बढ़ा दिया और उसका पिछला पहिया टीआई के ऊपर चढ़ गया। गंभीर रूप से घायल पुरी को अस्पताल ले जाया गया, लेकिन उन्हें बचाया नहीं जा सका। प्रारंभिक जानकारी के मुताबिक ट्रक में 208 पेटियों में 1,800 लीटर से अधिक शराब छिपाकर ले जाई जा रही थी। पुलिस अब शराब के स्रोत, परिवहन के रास्ते और उसके वास्तविक गंतव्य

जिला	घटनाएं	जिला	घटनाएं
भोपाल	28	राजगढ़	26
इंदौर	23	ग्वालियर	19
श्योपुर	19	टीकमगढ़	17
गुना	15	सिंगरौली	15
उज्जैन	14	शहडोल	13
रतलाम	12	धार	12
सीहोर	12	पन्ना	11
भिंड	10	दमोह	10

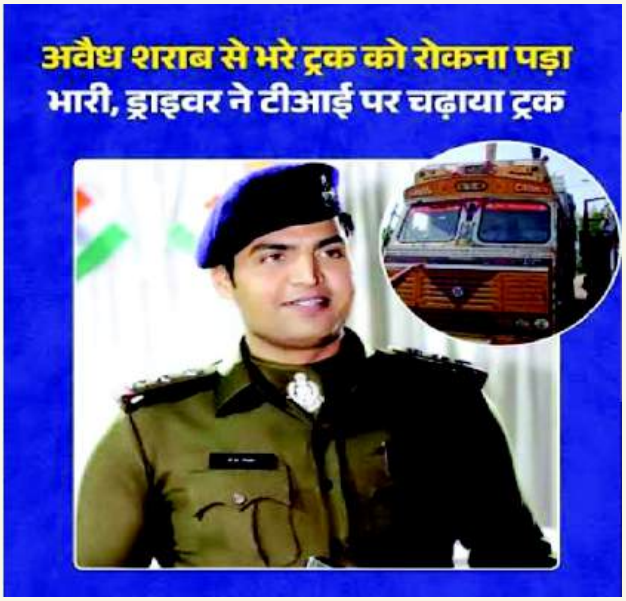

की जांच कर रही है। इस मामले में जांच का एक महत्वपूर्ण पहलू हरदा की दो शराब दुकानों से जुड़कर सामने आया है। बरामद शराब के बैच नंबर दुकानों को जारी किए गए स्टॉक से मेल खाने के बाद आबकारी विभाग ने दोनों दुकानों के लाइसेंस निलंबित कर दिए। तीन आबकारी कर्मचारियों पर भी निलंबन की कार्रवाई हुई है। लेकिन सबसे बड़ा सवाल यह है कि अवैध शराब की यह खेप किसके संरक्षण में और किसके लिए भेजी जा रही थी? क्या यह केवल एक वाहन चालक का अपराध था या इसके पीछे कोई बड़ा संगठित नेटवर्क काम कर रहा था? दिलीप पुरी की मौत की जांच में केवल दुर्घटना और वाहन चालक की भूमिका तक सीमित रहना पर्याप्त नहीं होगा। शराब के स्रोत, दुकानों के स्टॉक रिकॉर्ड, परिवहन की अनुमति, आबकारी अधिकारियों की भूमिका और संभावित आर्थिक लेनदेन की भी पड़ताल होनी चाहिए।

व्यक्ति के अधिकारों की भी रक्षा की जाए। कानून-व्यवस्था को लेकर किसी निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए नवीनतम आधिकारिक आंकड़ों और जिलेवार तथ्यों की जांच आवश्यक है। लेकिन एक सिद्धांत निर्विवाद है- सुरक्षा केवल सरकार का दावा नहीं,



नागरिक का अनुभव भी होनी चाहिए। यदि किसी नागरिक को न्याय पाने के लिए संघर्ष करना पड़े, तो उस अनुभव की समीक्षा करना प्रशासन की जिम्मेदारी है। मध्यप्रदेश में कानून-व्यवस्था को मजबूत बनाने के लिए पुलिस सुधार, तकनीकी क्षमता,

आंकड़ों की नजर में...

मध्यप्रदेश में बेहाल कानून-व्यवस्था

- महिलाओं के खिलाफ दर्ज अपराध, 2023- 2,979।
- दुष्कर्म के दर्ज मामले, 2023- 2,691।
- हत्या के मामले, 15 दिसंबर 2023 से जून 2025 तक- 10,626।
- 2023 में मध्यप्रदेश में महिलाओं के खिलाफ 32,342 मामले दर्ज हुए।
- 2024 में यह संख्या बढ़कर 32,832 हो गई।

मुख्यमंत्री डॉ. मोहन यादव द्वारा विधानसभा में दिए गए जवाब में 15 दिसंबर 2023 से 30 जून 2025 तक की अवधि में-

- 2,691 हत्या के मामले दर्ज होने की जानकारी दी गई।
- 10,626 दुष्कर्म के मामले दर्ज हुए।
- 7,812 NDPS अधिनियम के मामले दर्ज किए गए।

जवाबदेही, महिला सुरक्षा, साइबर अपराध पर नियंत्रण और निष्पक्ष जांच को प्राथमिकता देनी होगी।

महिलाओं की सुरक्षा: दावों से आगे बढ़ने की जरूरत

महिलाओं और बच्चियों की सुरक्षा किसी भी सरकार की प्राथमिकताओं में शामिल होनी चाहिए। छेड़छाड़, पीछा करने, घरेलू हिंसा, यौन अपराध और सार्वजनिक



महिला सुरक्षा, अपराध के आंकड़े और न्याय की चुनौती



महिलाओं के खिलाफ अपराध किसी भी समाज के लिए गंभीर चिंता का विषय हैं। बलात्कार, महिलाओं की हत्या, दहेज मृत्यु और यौन हिंसा न केवल पीड़ित महिलाओं, बल्कि उनके परिवारों और पूरे समाज को प्रभावित करते हैं। मध्य प्रदेश में इन अपराधों की स्थिति को समझने के लिए आवश्यक है कि उपलब्ध सरकारी आंकड़ों का वर्षवार अध्ययन किया जाए और अपराध की प्रकृति, पुलिस की कार्रवाई तथा न्यायिक प्रक्रिया को भी ध्यान में रखा जाए। मध्य प्रदेश में 2020 से 2026 तक महिला अपराधों की स्थिति, विशेष रूप से बलात्कार, महिलाओं की हत्या, बलात्कार के साथ हत्या और दहेज मृत्यु जैसे गंभीर अपराधों पर ध्यान दें तो स्थिति काफी गंभीर है। मध्य प्रदेश में महिला अपराधों की वर्षवार स्थिति-

वर्ष	संख्या
2020	25,640
2021	30,673
2022	32,765
2023	32,342
2024	32,832

2020 में दर्ज 25,640 मामलों की तुलना में 2024 में दर्ज मामलों की संख्या 32,832 बताई गई है। यह लगभग 28 प्रतिशत की वृद्धि है। शिकायत दर्ज कराने की स्थिति, पुलिस तक पहुँच और अपराधों के वर्गीकरण में बदलाव भी आंकड़ों को प्रभावित कर सकते हैं।

बलात्कार के मामलों की स्थिति

बलात्कार, महिलाओं के विरुद्ध सबसे गंभीर अपराधों में से एक है। इसके प्रभाव केवल शारीरिक नुकसान तक सीमित नहीं रहते, बल्कि पीड़िता के मानसिक स्वास्थ्य, सामाजिक जीवन और भविष्य पर भी पड़ सकते हैं। मध्य प्रदेश में 2023 और 2024 के उपलब्ध NCRB आधारित आंकड़े इस प्रकार हैं- 2023 में 2,979, 2024 में 3,061। 2023 में दर्ज 2,979 मामलों की तुलना में 2024 में 3,061 मामले दर्ज हैं।

परिचित व्यक्तियों द्वारा यौन हिंसा

2023 के उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार, मध्य प्रदेश में दर्ज 2,979 बलात्कार मामलों में 2,951 मामलों में आरोपी पीड़िता के परिचित बताए गए थे। इनमें 222 मामलों में आरोपी परिवार के

स्थानों पर असुरक्षा की शिकायतें केवल आपराधिक न्याय व्यवस्था का विषय नहीं हैं, बल्कि सामाजिक वातावरण और प्रशासनिक संवेदनशीलता की भी परीक्षा हैं। महिलाओं की सुरक्षा को लेकर योजनाएं बनाना, हेल्पलाइन चलाना और विशेष

सदस्य थे। यह तथ्य महिला सुरक्षा की चर्चा में महत्वपूर्ण है। महिलाओं की सुरक्षा का प्रश्न केवल सड़क, सार्वजनिक परिवहन या सुनसान स्थानों तक सीमित नहीं है। घर, पारिवारिक संबंधों और परिचित लोगों के बीच भी महिलाओं की सुरक्षा सुनिश्चित करना आवश्यक है।

वर्ष	हत्या के कुल दर्ज मामले
2020	2,101
2021	2,034
2022	1,978

इन आंकड़ों में 2020 से 2022 के बीच कुल हत्या के दर्ज मामलों में कमी दिखाई देती है। लेकिन यह साबित नहीं करता कि महिलाओं की हत्या भी उसी अनुपात में कम हुई। इसके लिए केवल महिला पीड़ितों की संख्या वाले अलग सरकारी आंकड़े आवश्यक हैं।

हर दिन एक रेप और एक छेड़छाड़ की वारदात

आधिकारिक आंकड़ों के अनुसार, साल 2024 में भोपाल में दुष्कर्म के 305 मामले दर्ज किए गए थे, जो 2025 में बढ़कर 367 हो गए। इस साल यानी 2026 के शुरुआती पांच महीनों (जनवरी से मई) के आंकड़े भी डराने वाले हैं। इस अवधि में अब तक 167 मामले दर्ज हो चुके हैं, जबकि पिछले साल इसी अवधि में 164 मामले आए थे। इसका सीधा मतलब यह है कि राजधानी में औसत रूप से हर दिन एक दुष्कर्म और एक छेडछाड का मामला पुलिस स्टेशन पहुंच रहा है। मध्यप्रदेश में पुलिस हिरासत में मौतों के आँकड़े इस प्रकार बताए गए हैं- 2021 में 228, 2022 में 238, 2023-24 में 12, 2024-25 में 08 और 2025-26 में 10।



पुलिस इकाइयां गठित करना महत्वपूर्ण कदम हो सकते हैं। लेकिन इनकी सफलता का वास्तविक पैमाना यह है कि जरूरत के समय सहायता कितनी जल्दी मिलती है, शिकायत दर्ज कराने में पीड़िता को कितनी कठिनाई होती है और मामले की जांच



कितनी संवेदनशीलता तथा निष्पक्षता से की जाती है। कई बार पीड़ित परिवार सामाजिक दबाव, बदनामी के डर या कानूनी प्रक्रिया की जटिलता के कारण शिकायत दर्ज कराने से हिचकते हैं। इसलिए केवल दर्ज मामलों की संख्या से पूरी स्थिति नहीं समझी जा

2025-26 के लिए उपलब्ध सरकारी आंकड़े

मध्यप्रदेश विधानसभा के 18 फरवरी 2026 के प्रश्नोत्तर में सरकार ने बताया कि 01 जनवरी 2025 से 31 जनवरी 2026 तक 1,264 साइबर अपराध दर्ज हुए और 12 आरोपियों को न्यायालय से सजा मिली।

2025-26 में अपराधों की स्थिति : क्या कहते हैं आंकड़े?

अपराध/सूचक	उपलब्ध सरकारी आंकड़ा	अवधि
हत्या	835 मामले	जनवरी-जून 2025
दुष्कर्म	3,525 मामले	जनवरी-जून 2025
NDPS अधिनियम के मामले	3,298 मामले	जनवरी-जून 2025
साइबर अपराध	1,264 मामले	जनवरी 2025 जनवरी 2026

मध्यप्रदेश में 2024 के दौरान महिलाओं के खिलाफ दर्ज अपराधों की संख्या 32,342 से बढ़कर 32,832 हुई। इसी अवधि में दुष्कर्म के दर्ज मामलों की संख्या 2,979 से बढ़कर 3,061 हो गई। इसके अलावा, 30 जुलाई 2025 को विधानसभा में पेश सरकारी जानकारी के अनुसार, 30 जून 2025 तक 23,129 महिलाएं और बच्चियां एक वर्ष से अधिक समय से लापता दर्ज थीं।

सकती। पुलिस को ऐसा भरोसेमंद वातावरण बनाना होगा, जिसमें शिकायतकर्ता बिना भय के सामने आ सकें। साथ ही, पीड़ित की पहचान और गरिमा की रक्षा तथा गवाहों की सुरक्षा पर भी पर्याप्त ध्यान देना होगा।



पुलिस की सक्रियता और राजनीतिक हस्तक्षेप की आशंका

पुलिस व्यवस्था की विश्वसनीयता इस बात पर निर्भर करती है कि कानून सभी नागरिकों पर समान रूप से लागू होता दिखाई दे। यदि किसी मामले में प्रभावशाली व्यक्ति का नाम सामने आता है, तो जांच की निष्पक्षता को लेकर जनता के मन में संदेह पैदा हो सकता है। दूसरी ओर, बिना प्रमाण किसी व्यक्ति को दोषी ठहराना भी न्याय के सिद्धांतों के विपरीत है। इसलिए जरूरी है कि संवेदनशील मामलों में पुलिस तथ्यों के आधार पर कार्रवाई करे और जांच की प्रगति के बारे में नियमानुसार जानकारी उपलब्ध कराए। राजनीतिक पद, आर्थिक प्रभाव या सामाजिक रसूख किसी को कानून से ऊपर नहीं बनाते। इसी तरह किसी

दुष्कर्म के मामलों में मध्यप्रदेश चौथे स्थान पर, लेकिन दुष्कर्म के साथ हत्या में देश में सबसे आगे



मध्यप्रदेश में महिलाओं की सुरक्षा को लेकर सवाल लगातार महत्वपूर्ण बने हुए हैं। दुष्कर्म जैसी गंभीर घटनाएं केवल आपराधिक न्याय व्यवस्था की चुनौती नहीं हैं, बल्कि समाज में महिलाओं के प्रति सुरक्षा, सम्मान और समानता के वातावरण की भी परीक्षा हैं। राज्य सरकार महिला सुरक्षा के लिए योजनाओं, पुलिस व्यवस्था और कानूनों के प्रभावी क्रियान्वयन की बात करती है, लेकिन राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (NCRB) के आंकड़े बताते हैं कि इस दिशा में लगातार निगरानी और सुधार की जरूरत है। NCRB की Crime in India 2024 रिपोर्ट के अनुसार, वर्ष 2024 में मध्यप्रदेश में दुष्कर्म के 3,061 मामले दर्ज हुए और इस श्रेणी में प्रदेश चौथे स्थान पर रहा। राजस्थान में 4,871, उत्तर प्रदेश में 3,209 और महाराष्ट्र में 3,091 मामले दर्ज किए गए। लेकिन एक दूसरी श्रेणी में तस्वीर अधिक चिंताजनक हैं। दुष्कर्म के साथ हत्या या सामूहिक दुष्कर्म के बाद हत्या के मामलों में मध्यप्रदेश में 55 मामले दर्ज हुए, जो राज्यों में सर्वाधिक संख्या थी। ये आंकड़े महिला सुरक्षा की वास्तविक स्थिति पर गंभीर चर्चा की मांग करते हैं। सवाल केवल यह नहीं है कि कितने मामले दर्ज हुए, बल्कि यह भी है कि अपराधों की रोकथाम के लिए क्या कदम उठाए जा रहे हैं, पुलिस कितनी तत्परता से कार्रवाई करती है

व्यक्ति के खिलाफ आरोप लग जाना अपने आप में अपराध सिद्ध होना नहीं है। पुलिस को कानून के प्रति जवाबदेह रहना चाहिए, न कि किसी व्यक्ति या समूह के निजी हितों के प्रति।

अपराध की घटनाएं और



और पीड़ितों को न्याय दिलाने की प्रक्रिया कितनी प्रभावी है।

आंकड़ों में दुष्कर्म की स्थिति

मध्यप्रदेश में 2023 में दुष्कर्म के 2,979 मामले दर्ज किए गए थे। वर्ष 2024 में यह संख्या बढ़कर 3,061 हो गई। यानी एक वर्ष में 82 मामलों की वृद्धि दर्ज हुई। यह वृद्धि अपने आप में पूरे प्रदेश में अपराध बढ़ने का निर्णायक प्रमाण है। दुष्कर्म के तीन हजार से अधिक दर्ज मामले राज्य की पुलिस, प्रशासन और समाज के सामने गंभीर चुनौती रखते हैं।

सबसे गंभीर चिंता : अपराध के साथ हत्या

दुष्कर्म के साथ हत्या या सामूहिक दुष्कर्म के बाद हत्या की श्रेणी में मध्यप्रदेश के 55 मामले दर्ज होना विशेष चिंता का विषय है। NCRB के 2024 के आंकड़ों के अनुसार, इस श्रेणी में प्रदेश राज्यों में सबसे ऊपर था। यह श्रेणी इसलिए गंभीर है, क्योंकि इसमें यौन हिंसा के साथ जीवन छीन लेने जैसा अत्यंत गंभीर अपराध भी शामिल है। प्रत्येक मामले की परिस्थितियों और जांच के निष्कर्ष अलग हो सकते हैं, लेकिन ऐसी घटनाओं की रोकथाम के लिए पुलिस की त्वरित प्रतिक्रिया, जोखिम की पहचान, प्रभावी गश्त और साक्ष्य-आधारित जांच महत्वपूर्ण हैं। सरकार को ऐसे मामलों का विश्लेषण कर यह देखना चाहिए कि घटनाएं किन परिस्थितियों में हुईं, क्या पहले कोई शिकायत दर्ज हुई थी, क्या पीड़ित को पहले से धमकियां मिल रही थीं और क्या समय रहते हस्तक्षेप की संभावना मौजूद थी। इस तरह की समीक्षा का उद्देश्य केवल जिम्मेदारी तय करना नहीं, बल्कि भविष्य में अपराध रोकने की क्षमता बढ़ाना भी होना चाहिए। NCRB की 2023 की रिपोर्ट के आधार पर प्रकाशित आंकड़ों के अनुसार, मध्यप्रदेश में दुष्कर्म के 2,979 मामलों में से 2,951 मामलों में आरोपी पीड़िता के परिचित थे। इनमें 222 मामलों में आरोपी परिवार

जवाबदेही का सवाल

कानून-व्यवस्था की स्थिति का आंकलन करते समय सबसे पहले यह देखना आवश्यक है कि राज्य में हत्या, लूट, चोरी, अपहरण, महिलाओं के खिलाफ अपराध, साइबर ठगी और संगठित अपराध

महिलाओं के खिलाफ अपराधों के आंकड़े

अपराध	2023	2024
महिलाओं के खिलाफ कुल अपराध	32,342	32,832
दुष्कर्म	2,979	3,061
दहेज हत्या	468	450
दहेज प्रताड़ना	7,577	7,514
महिलाओं का अपहरण	8,557	9,683
छेड़छाड़	5,078	4,967
POCSO के मामले	6,517	5,861

के सदस्य थे। ये आंकड़े बताते हैं कि महिला सुरक्षा को केवल सार्वजनिक स्थानों पर पुलिस की मौजूदगी तक सीमित नहीं किया जा सकता। परिचितों, पड़ोसियों और परिवार के सदस्यों से जुड़े मामलों में शिकायत दर्ज कराने, पीड़ित को सुरक्षा देने और निष्पक्ष जांच करने की व्यवस्था भी उतनी ही महत्वपूर्ण है। ऐसे मामलों में पीड़िता पर समझौते का दबाव, सामाजिक बदनामी का भय और परिवार की प्रतिक्रिया शिकायत दर्ज कराने में बाधा बन सकते हैं। पुलिस को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि शिकायतकर्ता की बात गंभीरता से सुनी जाए, उसकी पहचान सुरक्षित रहे और उस पर अनुचित दबाव न डाला जाए।

गर्भवती महिलाओं के खिलाफ दुष्कर्म के मामले

NCRB की 2024 की रिपोर्ट से जुड़ी मीडिया रिपोर्ट के अनुसार, मध्यप्रदेश में गर्भवती महिलाओं से दुष्कर्म के 10 मामले दर्ज हुए। इस श्रेणी में प्रदेश लगातार तीसरे वर्ष देश में सबसे अधिक मामले दर्ज करने वाला राज्य रहा। 2023 में मध्यप्रदेश में ऐसे नौ और 2022 में 24 मामले दर्ज हुए थे। ये आंकड़े संख्या में सीमित होने के बावजूद अत्यंत गंभीर हैं। ऐसे मामलों में पीड़ित महिला की सुरक्षा, चिकित्सकीय सहायता, मानसिक सहयोग और कानूनी संरक्षण के लिए संवेदनशील व्यवस्था की आवश्यकता होती है। साथ ही, प्रत्येक मामले की स्वतंत्र जांच जरूरी है, ताकि अपराध की परिस्थितियां स्पष्ट हों और दोष सिद्ध होने पर कानून के अनुसार दंड मिले।

पुलिस और प्रशासन की जवाबदेही

दुष्कर्म जैसे अपराधों की रोकथाम में पुलिस की भूमिका केवल प्राथमिकी दर्ज करने या आरोपी को गिरफ्तार करने तक सीमित नहीं है। समय पर शिकायत दर्ज करना, पीड़ित की सुरक्षा सुनिश्चित करना, चिकित्सकीय और फॉरेंसिक साक्ष्य जुटाना, गवाहों को संरक्षण देना तथा समयबद्ध आरोपपत्र दाखिल करना भी जरूरी है। राज्य सरकार को जिला स्तर पर ऐसे मामलों की नियमित समीक्षा करनी चाहिए। इसमें जांच पूरी होने में लगा समय, लंबित मामले, अदालतों में दोषसिद्धि, बरी होने के कारण और पीड़ितों को उपलब्ध कराई गई सहायता जैसे संकेतकों को शामिल किया जा सकता है।

मध्यप्रदेश में 2025-26 के अपराधों के आंकड़े: एक नजर

मध्यप्रदेश विधानसभा में मुख्यमंत्री डॉ. मोहन यादव द्वारा दिए गए लिखित जवाब के आधार पर 2025 के पहले छह महीनों के आंकड़े इस प्रकार हैं:

अपराध का प्रकार	जनवरी-जून 2025
हत्या	835
दुष्कर्म	3,525
NDPS एक्ट के मामले	3,298

इन आंकड़ों के अनुसार छह महीने में औसतन प्रतिदिन लगभग 4.6 हत्या और 19 दुष्कर्म के मामले दर्ज हुए।

NCRB की 2024 रिपोर्ट के आंकड़े

- मध्यप्रदेश 2024 में IPC/BNS के तहत दर्ज कुल अपराधों की संख्या के मामले में देश में तीसरे स्थान पर रहा।
- अनुसूचित जातियों के खिलाफ 7,765 मामले दर्ज हुए। इस श्रेणी में मध्यप्रदेश देश में दूसरे स्थान पर था।
- अनुसूचित जनजातियों के खिलाफ 3,165 मामले दर्ज हुए। इस श्रेणी में मध्यप्रदेश पहले स्थान पर रहा।
- साइबर अपराध के 1,081 मामले दर्ज किए गए।
- छह महीने में 835 हत्याएं।

जैसी घटनाओं की स्थिति क्या है। हर आपराधिक घटना के बाद कुछ बुनियादी सवाल उठते हैं। क्या पुलिस को समय पर सूचना मिली थी? क्या घटना को रोकने की संभावना थी? क्या संबंधित क्षेत्र में पुलिस की नियमित गश्त हो रही थी? क्या पीड़ित



● छह महीने में 3,525 दुष्कर्म के मामले।
● छह महीने में NDPS एक्ट के 3,298 मामले।
● वर्ष 2024 में कुल 2,82,874 IPC/BNS मामले।

अगस्त 2025 में विधानसभा में सरकार की ओर से प्रस्तुत जानकारी के अनुसार, जनवरी से जून 2025 के बीच प्रदेश में-

● 3,742 महिलाओं के साथ दुष्कर्म के मामले दर्ज हुए।
● इनमें 120 सामूहिक दुष्कर्म के मामले थे।
● पीड़िताओं में 905 अनुसूचित जाति, 1,143 अनुसूचित जनजाति, 1,228 पिछड़ा वर्ग और 466 सामान्य वर्ग की महिलाएं थीं।
● रिपोर्ट के अनुसार दुष्कर्म के मामलों में दोषसिद्धि का प्रतिशत केवल 2.79 प्रतिशत बताया गया। छह महीने में अपराध का औसत- 20.6, प्रतिदिन दुष्कर्म के मामले- 120।

जनवरी 2024 से जून 2025 तक की अवधि में एक साल से अधिक समय से लापता महिलाओं और बच्चियों की संख्या-

महिलाएं	21,175
नाबालिग बच्चियां	1,954
कुल	**23,129**

इसी अवधि में दुष्कर्म और यौन अपराधों के आरोपियों की गिरफ्तारी को लेकर भी सवाल उठे। रिपोर्ट के मुताबिक महिलाओं से दुष्कर्म के 292 और नाबालिगों से दुष्कर्म के 283 आरोपी फरार थे। ऱ्कडए की 2024 की रिपोर्ट के अनुसार, मध्यप्रदेश में दुष्कर्म के 3,061 मामले दर्ज हुए। देशभर में यह संख्या 29,536 थी। मध्यप्रदेश में दुष्कर्म के बाद हत्या या सामूहिक दुष्कर्म के बाद हत्या की 55 घटनाएं दर्ज हुईं, जो राज्यों में सर्वाधिक थीं।

बेटियों की सुरक्षा पर आंकड़ों के 5 बड़े सवाल

● छह महीने में 3,742 दुष्कर्म के मामले सामने आए, आखिर अपराधों पर नियंत्रण क्यों नहीं?
● 23,129 महिलाएं और बच्चियां एक साल से अधिक समय से लापता क्यों हैं?
● दुष्कर्म के मामलों में दोषसिद्धि का प्रतिशत इतना कम क्यों है?
● महिलाओं के अपहरण के मामले 2023 के मुकाबले 2024 में क्यों बढ़े?

की शिकायत को गंभीरता से लिया गया? क्या आरोपियों की पहचान और गिरफ्तारी समय पर हुई? और सबसे महत्वपूर्ण, क्या जांच को इस स्तर तक पहुंचाया गया कि पीड़ित को न्याय मिलने की वास्तविक संभावना बने?



इन सवालों के जवाब ही पुलिस की कार्यक्षमता और प्रशासनिक जवाबदेही का मूल्यांकन करने में मदद करते हैं। केवल गिरफ्तारी को सफलता मान लेना पर्याप्त नहीं है। निष्पक्ष जांच, ठोस साक्ष्य, समय पर अभियोजन और अदालत में प्रभावी पैरवी भी उतनी ही जरूरी हैं।

साइबर अपराध और बदलती चुनौतियां

अपराध का स्वरूप तेजी से बदल रहा है। डिजिटल भुगतान, सोशल मीडिया और ऑनलाइन सेवाओं के विस्तार के साथ साइबर ठगी, फर्जी निवेश योजनाओं, पहचान के दुरुपयोग और डिजिटल ब्लैकमेल जैसी चुनौतियां भी बढ़ी हैं।

ऐसे अपराधों में आरोपी दूसरे शहर या राज्य में बैठकर वारदात कर सकते हैं, जिससे जांच अधिक जटिल हो जाती है। इस चुनौती से निपटने के लिए पुलिस को तकनीकी प्रशिक्षण, डिजिटल साक्ष्य जुटाने की क्षमता और दूसरे राज्यों की एजेंसियों के साथ बेहतर समन्वय की जरूरत है। आम नागरिकों को भी जागरूक करना होगा कि वे ओटीपी, बैंकिंग विवरण और निजी जानकारी किसी अनजान व्यक्ति से साझा न करें।

साइबर अपराध में शिकायत दर्ज कराने की प्रक्रिया सरल होनी चाहिए। पीड़ित को यह स्पष्ट जानकारी मिलनी चाहिए कि शिकायत कहां करनी है, बैंक खाते से संबंधित संदिग्ध लेन-देन के बाद कौन-से तत्काल कदम उठाने हैं और जांच की प्रगति कैसे पता की जा सकती है। तकनीकी अपराधों के मामलों में शुरुआती कार्रवाई महत्वपूर्ण हो सकती है, इसलिए पुलिस और वित्तीय संस्थानों के बीच त्वरित समन्वय आवश्यक है।

थानों तक पहुंच और आम आदमी का भरोसा

कानून-व्यवस्था का सबसे सीधा अनुभव नागरिक को पुलिस थाने में होता है। यदि किसी व्यक्ति को शिकायत दर्ज कराने के लिए बार-बार चक्कर लगाने पड़ें, उसकी बात न सुनी जाए या उसे अनावश्यक रूप से परेशान किया जाए, तो उसका भरोसा कमजोर होता है। इसके विपरीत, संवेदनशील व्यवहार, पारदर्शी प्रक्रिया और समयबद्ध कार्रवाई पुलिस की छवि को मजबूत बनाते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों, छोटे कस्बों और शहरी बस्तियों में पुलिस की उपलब्धता तथा गश्त की प्रभावशीलता का नियमित मूल्यांकन होना चाहिए। स्थानीय विवादों, जमीन संबंधी तनाव और आपसी रंजिश से जुड़े मामलों में शुरुआती स्तर पर निष्पक्ष हस्तक्षेप कई बार बड़ी घटना को रोक सकता है।

शराब, रेत और खनन के अवैध कारोबार पर लगाम लगाने में मोहन सरकार हुई नाकाम

देवास टीआई दिलीप पुरी की मौत ने फिर खड़े किए गंभीर सवाल



विजया पाठक

मध्यप्रदेश में खाकी वर्दी एक बार फिर निशाने पर है। जिस वर्दी के कंधों पर प्रदेश की साढ़े आठ करोड़ जनता की सुरक्षा का दायित्व है, जब उसी वर्दी को अपनी जान बचाने के लिए संघर्ष करना पड़े तो कानून-व्यवस्था की स्थिति पर सवाल उठना स्वाभाविक है। देवास जिले के खातेगांव में थाना प्रभारी दिलीप पुरी की मौत ने एक बार फिर प्रदेश में सक्रिय अवैध कारोबार और

मध्यप्रदेश की कानून-व्यवस्था और पुलिसकर्मियों की सुरक्षा पर हमला, कानून को चुनौती

पुलिसकर्मियों की सुरक्षा को लेकर गंभीर चिंता पैदा कर दी है। यह केवल एक पुलिस अधिकारी की मौत नहीं, बल्कि कानून के सामने खड़ी उस चुनौती का संकेत है, जिसमें अवैध कारोबार से जुड़े लोग कार्यवाई रोकने के लिए जानलेवा कदम उठाने तक से नहीं हिचक रहे हैं। घटना 02 नवंबर 2026 की है। अवैध शराब तस्करी की सूचना पर खातेगांव थाना प्रभारी दिलीप पुरी पुलिस टीम के साथ इंदौर-बैतूल हाईवे



जब पुलिस ही सुरक्षित नहीं तो आम जनता की सुरक्षा की गारंटी कौन देगा?

पर जांच के लिए पहुंचे थे। इसी दौरान एक संदिग्ध ट्रक को रोकने की कोशिश में वह उसकी चपेट में आ गए। गंभीर चोटों के कारण उनकी मौत हो गई। इस ट्रक में अवैध शराब ले जाई जा रही थी। इस घटना ने प्रदेश के सामने एक बड़ा सवाल खड़ा कर दिया है कि आखिर अवैध कारोबार के खिलाफ कार्रवाई करने वाले पुलिस अधिकारियों की सुरक्षा की जिम्मेदारी किसकी है?

खाकी पर हमलों का पुराना सिलसिला

मध्यप्रदेश में अवैध खनन, रेत परिवहन और शराब तस्करी के खिलाफ कार्रवाई के दौरान पुलिस एवं प्रशासनिक अधिकारियों पर हमले की घटनाएं पहले भी सामने आती रही हैं। मुरैना में आईपीएस नरेंद्र कुमार सिंह की मौत, छिंदवाड़ा में एएसआई देवेंद्र नगाले की हत्या, गुना में पुलिसकर्मियों की मौत और शहडोल में एएसआई महेंद्र बागरी की जान जाना ऐसे मामले हैं, जिन्होंने समय-समय पर व्यवस्था को कटघरे में खड़ा किया है। 2012 से अब तक अवैध खनन और शराब परिवहन के खिलाफ कार्रवाई के दौरान सात सरकारी कर्मचारियों की जान गई, जिनमें चार पुलिसकर्मी शामिल थे। इन घटनाओं को महज अलग-अलग आपराधिक वारदात मानकर नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। आखिर राज्य सरकार इनके पीछे छिपे नेटवर्क, आर्थिक हितों और स्थानीय स्तर पर मिलने वाले संभावित संरक्षण की जांच करने में अब तक क्यों विफल साबित हो रही है। सवाल यह है कि जब किसी इलाके में अवैध कारोबार लगातार फलता-फूलता है तो क्या संबंधित विभागों को इसकी जानकारी नहीं होती? यदि जानकारी होती है तो समय रहते कार्रवाई क्यों नहीं होती? और यदि कार्रवाई होती है तो उसे अंजाम देने वाले अधिकारियों को पर्याप्त सुरक्षा क्यों नहीं मिलती?



माफिया का दुस्साहस या व्यवस्था की कमजोरी?

प्रदेश में कभी रेत माफिया की गतिविधियां चर्चा में रहती हैं तो कभी अवैध खनन, शराब तस्करी और शिक्षा के नाम पर चल रहे संगठित कारोबार की शिकायतें सामने आती हैं। स्कूलों में मनमानी फीस और नियमों के उल्लंघन के आरोप हों या खदानों में अवैध उत्खनन का मामला, हर जगह प्रशासन की जिम्मेदारी का सवाल उठता है। लेकिन परिणाम कुछ नहीं सामने आते, समस्या जस की तस बनी हुई है। सबसे चिंताजनक स्थिति तब बनती है जब किसी अवैध कारोबार के खिलाफ कार्रवाई करने पहुंचे अधिकारी को ही अपनी जान गंवानी पड़ जाए। आखिर अपराधियों के मन में कानून का भय इतना कमजोर कैसे पड़ जाता है कि वे पुलिस की मौजूदगी में भी कानून को चुनौती देने का दुस्साहस कर लेते हैं? क्या केवल कुछ आरोपियों की गिरफ्तारी से इस समस्या का समाधान हो जाएगा? जब तक अवैध कारोबार की आर्थिक जड़ों और उसके पूरे नेटवर्क पर चोट नहीं होगी, तब तक ऐसी घटनाओं की पुनरावृत्ति का खतरा बना रहेगा।

मुख्यमंत्री डॉ. मोहन यादव से जवाबदेही के सवाल

मुख्यमंत्री डॉ. मोहन यादव के पास गृह विभाग की भी जिम्मेदारी है। ऐसे में प्रदेश की कानून-व्यवस्था और पुलिस बल की सुरक्षा को लेकर उनकी जवाबदेही और भी महत्वपूर्ण हो जाती है। सरकार अपराधियों के खिलाफ सख्त कार्रवाई और जीरो टॉलरेंस की नीति की बात करती रही है, लेकिन जमीन पर इसका प्रभाव बिल्कुल दिखाई नहीं दे रहा है। अपराधी खुलेआम घूम रहे हैं। माफियाओं के हौंसले बुलंद हैं। मरने-मारने का भय माफियाओं के दिमाग से निकल गया है।

कुछ दिनों में ठंडा पड़ जाएगा मामला?

मध्यप्रदेश में कानून का राज केवल सरकारी घोषणाओं और पुलिस की वर्दी से कायम नहीं होता। इसके लिए अपराधियों के मन में कानून का भय और जनता के मन में सुरक्षा का विश्वास होना जरूरी है। पुलिसकर्मी जब किसी तस्कर को रोकने के लिए सड़क पर उतरता है तो उसके पीछे शासन और पूरी प्रशासनिक व्यवस्था की ताकत होनी चाहिए। यदि वह अकेला पड़ जाता है तो यह केवल पुलिस विभाग की नहीं, बल्कि शासन की विफलता है। मोहन सरकार को यह भरोसा देना होगा कि ईमानदारी से ड्यूटी करने वाले किसी भी पुलिसकर्मी को अपराधियों के सामने असहाय नहीं छोड़ा जाएगा। कुल मिलाकर देवास के टीआई दिलीप पुरी की मौत को एक और घटना बनाकर भुला देना सबसे बड़ी भूल होगी। यह मध्यप्रदेश की कानून-व्यवस्था, मुख्यमंत्री डॉ. मोहन यादव के सामने खड़ा बड़ा प्रश्न है, जिसका जवाब माफियाओं पर कार्यवाही कर उनके नेटवर्क को ध्वस्त करके देना होगा।

वोट बचाओ देश बचाओ रैली

राहुल गांधी ने भरी सियासी हुंकार



विजया पाठक

दिल्ली के ऐतिहासिक रामलीला मैदान में 1 नवंबर 2026 को आयोजित विपक्षी गठबंधन इंडिया की वोट बचाओ, देश बचाओ रैली ने देश की राजनीति में एक नई बहस को जन्म दे दिया है। कांग्रेस नेता और लोकसभा में नेता प्रतिपक्ष राहुल गांधी के नेतृत्व में आयोजित इस रैली का केंद्रीय मुद्दा भारतीय लोकतंत्र की मजबूती, मतदाता सूची की पारदर्शिता, चुनाव आयोग की निष्पक्षता और संविधान की रक्षा रहा। विपक्ष ने इस मंच के माध्यम से केंद्र की नरेंद्र मोदी सरकार और चुनाव आयोग की कार्यप्रणाली पर गंभीर सवाल उठाए। राहुल गांधी ने इसे किसी एक राजनीतिक दल का कार्यक्रम नहीं, बल्कि देश के लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा के लिए जरूरी जनआंदोलन के रूप में प्रस्तुत किया।

रामलीला मैदान का अपना एक ऐतिहासिक महत्व रहा है। देश के राजनीतिक और सामाजिक आंदोलनों ने इसी मैदान से कई बार सत्ता के सामने अपनी आवाज बुलंद की है। भ्रष्टाचार के खिलाफ आंदोलन से लेकर बड़े राजनीतिक संघर्षों तक, इस मैदान ने भारतीय लोकतंत्र के कई महत्वपूर्ण अध्याय देखे हैं। ऐसे में यहां आयोजित वोट बचाओ देश बचाओ रैली केवल एक राजनीतिक सभा नहीं थी, बल्कि विपक्ष की ओर से जनता के बीच यह संदेश देने की कोशिश भी थी कि लोकतंत्र में चुनाव की निष्पक्षता और नागरिक के मताधिकार का महत्व सर्वोपरि है। राहुल गांधी ने इस रैली के माध्यम से चुनावी प्रक्रिया को लेकर उठाए जा रहे सवालों को राष्ट्रीय राजनीतिक बहस के केंद्र में लाने का प्रयास किया। उनका जोर इस बात पर रहा कि लोकतंत्र में जनता का वोट सबसे बड़ी ताकत है और यदि मतदाता सूची की विश्वसनीयता पर सवाल खड़े होते हैं, तो

उनका पारदर्शी तरीके से समाधान होना चाहिए।

वोट चोरी का मुद्दा बना विपक्ष की लड़ाई का केंद्र

इस रैली की सबसे महत्वपूर्ण पृष्ठभूमि मतदाता सूची के विशेष गहन पुनरीक्षण यानी एसआईआर को लेकर उठे विवाद में छिपी है। विपक्ष का आरोप है कि मतदाता सूचियों में संशोधन के नाम पर बड़ी संख्या में वास्तविक मतदाताओं के नाम हटाए जा रहे हैं। विपक्षी दलों ने आशंका जताई है कि इस प्रक्रिया से गरीब, अल्पसंख्यक, प्रवासी मजदूर और कमजोर सामाजिक वर्ग के मतदाता प्रभावित हो सकते हैं। उनका कहना है कि मतदाता सूची में किसी योग्य नागरिक का नाम शामिल होना लोकतंत्र की बुनियादी शर्त है। यदि किसी नागरिक को मतदान के अधिकार से वंचित कर दिया जाता है तो उसके राजनीतिक प्रतिनिधित्व पर भी सीधा असर पड़ता है। विपक्ष ने यह भी सवाल उठाया कि मतदाता सूची में नाम जोड़ने, हटाने और संशोधित करने की प्रक्रिया कितनी पारदर्शी है। किसी मतदाता का नाम हटाने से पहले उसे पर्याप्त सूचना और अपना पक्ष रखने का अवसर मिलना चाहिए। चुनाव आयोग को यह स्पष्ट करना चाहिए कि कितने नाम हटाए गए, किन कारणों से हटाए गए और कितने लोगों ने दोबारा नाम जुड़वाने के लिए आवेदन किया। चुनावी प्रक्रिया में पारदर्शिता केवल राजनीतिक दलों की मांग नहीं, बल्कि हर मतदाता का अधिकार है। हालांकि, चुनाव आयोग और सरकार का पक्ष भी इस बहस में महत्वपूर्ण है। उनका कहना है कि मतदाता सूची का पुनरीक्षण फर्जी, दोहरे और अपात्र नामों को हटाने तथा सूची को शुद्ध बनाने के लिए आवश्यक प्रक्रिया है। आयोग के अनुसार, गलत तरीके से नाम हटने की स्थिति में नागरिक निर्धारित प्रक्रिया के तहत दोबारा नाम दर्ज कराने का आवेदन कर सकते हैं। इसलिए एसआईआर को

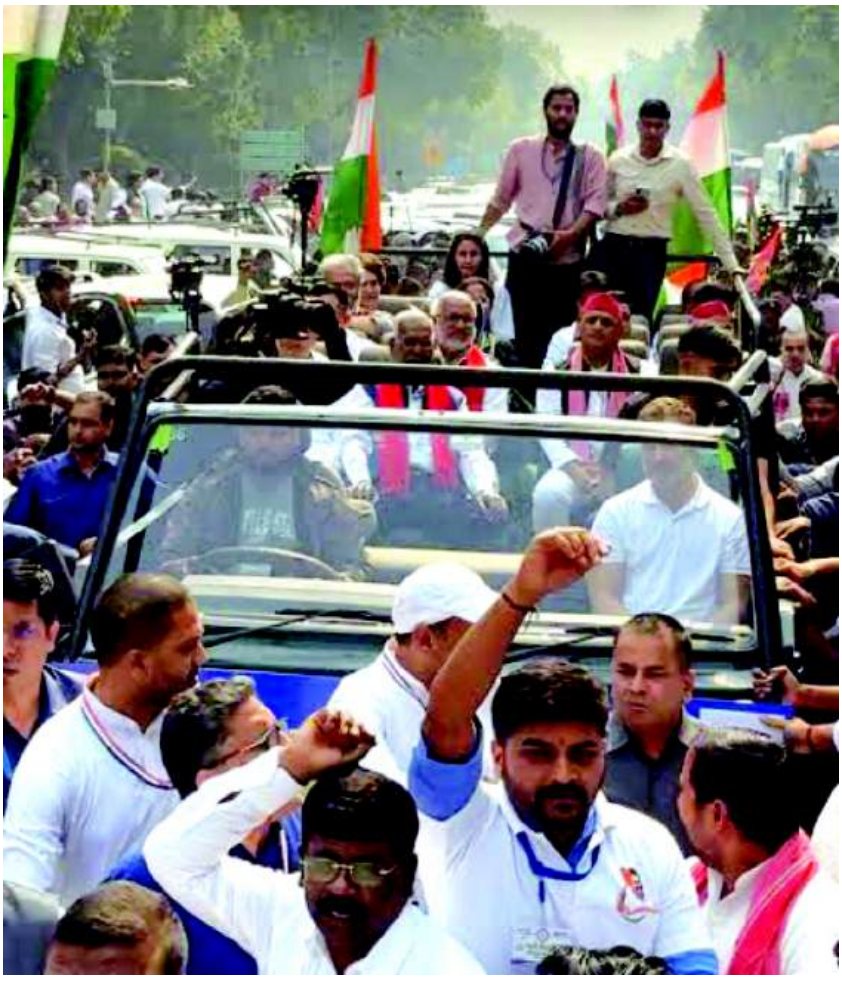

लेकर उठे सवालों का समाधान आरोप-प्रत्यारोप से नहीं, बल्कि आंकड़ों, दस्तावेजों और स्वतंत्र जांच से होना चाहिए। राहुल गांधी और विपक्ष की मांग है कि इस पूरी प्रक्रिया की निष्पक्ष समीक्षा हो और मतदाता सूची से जुड़े हर फैसले का स्पष्ट हिसाब जनता के सामने रखा जाए। लोकतंत्र में मतदाता सूची केवल प्रशासनिक दस्तावेज नहीं होती, बल्कि यह जनता की राजनीतिक भागीदारी का आधार है। इसमें किसी भी तरह की त्रुटि या पक्षपात की आशंका को गंभीरता से लिया जाना चाहिए।

राहुल गांधी का संविधान पर सीधा संदेश

रामलीला मैदान में राहुल गांधी के भाषण का सबसे प्रमुख संदेश संविधान की सर्वोच्चता को लेकर था। उन्होंने प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी, केंद्रीय गृह मंत्री अमित शाह और मुख्य चुनाव आयुक्त ज्ञानेश कुमार पर निशाना साधते हुए कहा कि कोई भी व्यक्ति संविधान से बड़ा नहीं हो सकता। उनका तर्क था कि लोकतंत्र में सत्ता जनता से आती है और जनता की इच्छा को व्यक्त करने का सबसे महत्वपूर्ण माध्यम उसका वोट है। राहुल गांधी ने रैली में कहा कि यह केवल किसी राजनीतिक दल की आवाज नहीं है, बल्कि देश के युवाओं, किसानों और आम नागरिकों की आवाज है। उन्होंने इस आंदोलन को राजनीतिक सत्ता प्राप्त करने की लड़ाई से अलग रखते हुए लोकतांत्रिक

अधिकारों की रक्षा का संघर्ष बताया। उनके भाषण में बार-बार यह बात सामने आई कि संविधान किसी सरकार, पार्टी या व्यक्ति की निजी संपत्ति नहीं है। यह देश के प्रत्येक नागरिक को समान अधिकार और सम्मान देने वाला राष्ट्रीय दस्तावेज है। राहुल गांधी का यह संदेश राजनीतिक रूप से इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि पिछले कुछ वर्षों से कांग्रेस अपनी राजनीति में संविधान और सामाजिक न्याय के मुद्दों को प्रमुखता देती रही है। लोकसभा चुनाव 2024 के दौरान भी संविधान और आरक्षण का सवाल विपक्ष के प्रचार का महत्वपूर्ण हिस्सा रहा



था। अब 2026 में मतदाता सूची और चुनावी पारदर्शिता के मुद्दे को उसी राजनीतिक विमर्श से जोड़ने की कोशिश की जा रही है। यहां राहुल गांधी के सामने सबसे बड़ी चुनौती केवल सरकार पर आरोप लगाना नहीं, बल्कि जनता को यह विश्वास दिलाना है कि कांग्रेस और विपक्ष लोकतांत्रिक संस्थाओं की मजबूती के लिए एक ठोस वैकल्पिक व्यवस्था भी प्रस्तुत कर सकते हैं। संविधान की प्रति हाथ में लेकर उसकी रक्षा की बात करना प्रतीकात्मक रूप से प्रभावी हो सकता है, लेकिन वास्तविक परीक्षा संस्थाओं की स्वतंत्रता, नागरिक अधिकारों और पारदर्शी चुनावी व्यवस्था के लिए निरंतर संघर्ष में होगी।

विपक्षी एकजुटता ने दिखाई नई राजनीतिक तस्वीर

इस रैली का एक बड़ा राजनीतिक पक्ष विपक्षी गठबंधन इंडिया की एकजुटता भी रहा। पिछले कुछ समय से गठबंधन के भीतर कई राज्यों में सीटों के बंटवारे, नेतृत्व और राजनीतिक प्राथमिकताओं को लेकर मतभेद सामने आते रहे हैं। पश्चिम बंगाल, उत्तर प्रदेश और बिहार जैसे राज्यों में क्षेत्रीय दलों की अपनी राजनीतिक महत्वाकांक्षाएं हैं। ऐसे में रामलीला मैदान पर एक साझा मंच पर विपक्षी नेताओं का जुटना अपने आप में महत्वपूर्ण राजनीतिक घटनाक्रम था।

रैली में कांग्रेस अध्यक्ष मल्लिकार्जुन खरगे, राहुल गांधी, सोनिया गांधी, प्रियंका गांधी वाड्रा, पश्चिम बंगाल की मुख्यमंत्री ममता बनर्जी, समाजवादी पार्टी के अध्यक्ष अखिलेश यादव, राष्ट्रीय जनता दल के नेता तेजस्वी यादव, नेशनल कॉन्फ्रेंस के फारूक अब्दुल्ला और पीडीपी की महबूबा मुफ्ती सहित कई प्रमुख विपक्षी नेता मौजूद रहे। इन नेताओं ने अलग-अलग राज्यों की राजनीतिक परिस्थितियों के बावजूद मतदाता सूची और चुनावी निष्पक्षता के सवाल पर एक साझा मंच तैयार किया। ममता बनर्जी का इस मंच पर सोनिया गांधी को अपना नेता कहकर संबोधित करना भी राजनीतिक दृष्टि से चर्चा का विषय बना। यह संकेत था कि विपक्षी दल अपने आपसी मतभेदों को पीछे रखकर कम से कम कुछ महत्वपूर्ण राष्ट्रीय मुद्दों पर एक साथ खड़े होने की कोशिश कर रहे हैं। अखिलेश यादव ने उत्तर प्रदेश की राजनीति और मतदाता अधिकारों का मुद्दा उठाया, जबकि तेजस्वी यादव ने लोकतंत्र की लड़ाई को व्यापक राजनीतिक संघर्ष के रूप में प्रस्तुत किया। फारूक अब्दुल्ला और महबूबा मुफ्ती ने भी अपने संबोधनों में संविधान, नागरिक अधिकार और देश की एकता का सवाल उठाया। यह एकजुटता कितनी टिकाऊ होगी, इसका फैसला आने वाले समय में होगा। विपक्षी गठबंधन के सामने सबसे बड़ी चुनौती है कि वह केवल विरोध के मंच तक सीमित न रहे। उसे महंगाई, बेरोजगारी, किसानों की समस्याओं, महिलाओं की सुरक्षा, शिक्षा और स्वास्थ्य जैसे मुद्दों पर भी साझा कार्यक्रम बनाना होगा। केवल चुनाव आयोग या केंद्र सरकार के विरोध में एकत्रित होने से जनता का स्थायी विश्वास हासिल नहीं किया जा सकता। जनता को यह भी जानना है कि यदि विपक्ष को शासन का अवसर मिलता है तो वह देश की व्यवस्था को किस तरह बेहतर बनाएगा।

चुनाव आयोग की निष्पक्षता पर उठे सवाल

भारतीय लोकतंत्र में चुनाव आयोग की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। संविधान के अनुच्छेद 324 के तहत चुनावों के अधीक्षण, निर्देशन और नियंत्रण की जिम्मेदारी चुनाव आयोग को दी गई है। यह संस्था केवल चुनाव कराने वाली एजेंसी नहीं, बल्कि लोकतांत्रिक प्रक्रिया की विश्वसनीयता की संवैधानिक संरक्षक भी है। देश में चुनाव तभी निष्पक्ष माने जा

सकते हैं, जब सभी राजनीतिक दलों और मतदाताओं को यह विश्वास हो कि चुनाव आयोग बिना किसी दबाव या पक्षपात के काम कर रहा है। रामलीला मैदान की रैली में विपक्ष ने मुख्य चुनाव आयुक्त ज्ञानेश कुमार के इस्तीफे की मांग उठाई। इसके साथ ही एसआईआर प्रक्रिया को रोकने और हटाए गए मतदाताओं के नाम बहाल करने की मांग भी की गई। विपक्ष ने चुनाव में इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीनों के स्थान पर बैलेट पेपर से मतदान कराने की मांग को भी दोहराया। मल्लिकार्जुन खरगे ने इन मांगों को विपक्ष के व्यापक लोकतांत्रिक संघर्ष का हिस्सा बताया। लेकिन यहां एक महत्वपूर्ण सवाल यह भी है कि क्या किसी संवैधानिक संस्था की निष्पक्षता पर उठने वाले सवालों का समाधान केवल उसके प्रमुख के इस्तीफे से हो सकता है? निश्चित रूप से नहीं। इसके लिए नियुक्ति प्रक्रिया, निर्णय लेने की व्यवस्था, शिकायतों के निपटारे, चुनावी आंकड़ों की उपलब्धता और राजनीतिक दलों के प्रति समान व्यवहार जैसे विषयों पर व्यापक संस्थागत सुधार आवश्यक हैं। यदि विपक्ष के पास चुनावी अनियमितताओं के प्रमाण हैं तो उन्हें सार्वजनिक करना चाहिए और संबंधित संवैधानिक तथा न्यायिक मंचों पर मजबूती से उठाना चाहिए। दूसरी ओर, चुनाव आयोग की जिम्मेदारी है कि वह विपक्ष के सवालों का जवाब तथ्यों के आधार पर दे। लोकतंत्र में किसी संस्था की विश्वसनीयता केवल उसके संवैधानिक दर्जे से नहीं, बल्कि उसके कामकाज की पारदर्शिता और जनता के विश्वास से भी बनती है।

सरकार और भाजपा की चुनौती भी कम नहीं

राहुल गांधी की रैली के बाद भाजपा और केंद्र सरकार ने विपक्ष के आरोपों को खारिज किया है। भाजपा का कहना है कि कांग्रेस चुनावी हार को स्वीकार करने के बजाय चुनाव आयोग और लोकतांत्रिक संस्थाओं पर सवाल उठाकर राजनीतिक भ्रम पैदा कर रही है। भाजपा नेताओं ने कांग्रेस को आपातकाल की याद भी दिलाई और कहा कि लोकतंत्र की बात करने वाली कांग्रेस का अपना इतिहास भी सवालों से मुक्त नहीं है। 5 नवंबर को केंद्रीय गृह मंत्री अमित शाह ने हरियाणा के करनाल में आयोजित भाजपा की 'लोकतंत्र बचाओ, अराजकता हटाओ' रैली में राहुल गांधी और



विपक्ष पर पलटवार किया। उन्होंने कहा कि सरकार एसआईआर पर संसद में चर्चा के लिए तैयार है। इससे स्पष्ट है कि लोकतंत्र और चुनावी पारदर्शिता का मुद्दा अब केवल विपक्ष की रैली तक सीमित नहीं रहा, बल्कि भाजपा भी इसके जवाब में देशभर में राजनीतिक अभियान चला रही है। भाजपा के सामने भी यह साबित करने की चुनौती है कि चुनाव आयोग और अन्य संवैधानिक संस्थाएं पूरी स्वतंत्रता से काम कर रही हैं। केवल विपक्ष के आरोपों को राजनीतिक दुर्भावना बताकर खारिज करना पर्याप्त नहीं होगा। सरकार को ऐसे सभी सवालों का जवाब देना चाहिए जिनका संबंध मतदाताओं के अधिकार और चुनावी प्रक्रिया की पारदर्शिता से है।

यह भी ध्यान रखना होगा कि लोकतंत्र में विपक्ष की भूमिका सरकार की आलोचना करना और जनता के हितों से जुड़े सवाल उठाना है। सरकार की जिम्मेदारी है कि वह आलोचना का जवाब तथ्यों और संवैधानिक मर्यादाओं के आधार पर दे। सत्ता पक्ष और विपक्ष के बीच यह स्वस्थ टकराव लोकतंत्र को कमजोर नहीं, बल्कि मजबूत बनाता हैबशर्ते दोनों पक्ष संस्थाओं की गरिमा और कानून के दायरे का सम्मान करें।



लोकतंत्र की लड़ाई में आम आदमी कहां खड़ा है?

रामलीला मैदान की रैली का सबसे महत्वपूर्ण पहलू यह है कि लोकतंत्र की बहस अब केवल राजनीतिक दलों के बीच सत्ता संघर्ष तक सीमित नहीं रहनी चाहिए। इसका सीधा संबंध आम आदमी के अधिकारों से है। एक गरीब मजदूर, किसान, महिला, युवा या अल्पसंख्यक नागरिक के लिए मतदान का अधिकार केवल चुनाव में बटन दबाने तक सीमित नहीं है। यह अधिकार उसे देश की सरकार चुनने और अपने भविष्य के फैसलों में भागीदारी करने का अवसर देता है। यदि किसी गरीब परिवार का नाम मतदाता सूची से गायब हो जाता है, तो उसके पास अपनी आवाज उठाने का एक महत्वपूर्ण संवैधानिक माध्यम कमजोर पड़ जाता है। इसी तरह यदि किसी क्षेत्र में मतदाता सूची को लेकर भ्रम और असंतोष पैदा होता है तो चुनावी प्रक्रिया पर जनता का भरोसा प्रभावित हो सकता है। इसलिए मतदाता सूची का शुद्धिकरण जरूरी है, लेकिन यह प्रक्रिया ऐसी होनी चाहिए जिसमें किसी भी योग्य नागरिक का अधिकार न छिने। रैली में महंगाई, बेरोजगारी, प्रदूषण और महिलाओं की सुरक्षा जैसे मुद्दे भी सामने आए। इससे यह स्पष्ट हुआ कि जनता की चिंताएं केवल वोट चोरी के आरोप तक सीमित नहीं हैं। आम नागरिक लोकतंत्र से बेहतर जीवन, रोजगार, सामाजिक सुरक्षा और न्याय की भी अपेक्षा करता है। राहुल गांधी और कांग्रेस को इस बात पर विशेष ध्यान देना होगा कि लोकतंत्र बचाने का आंदोलन आम आदमी की रोजमर्रा की समस्याओं से भी जुड़े। यदि यह आंदोलन केवल राजनीतिक भाषणों और नारों तक सीमित रहा तो इसका प्रभाव कुछ समय बाद कमजोर पड़ सकता है। लेकिन यदि इसके माध्यम से नागरिक अधिकारों, चुनावी सुधारों और सामाजिक न्याय की ठोस मांगें सामने आती हैं तो यह एक व्यापक राष्ट्रीय विमर्श का रूप ले सकता है।

राहुल गांधी के सामने नेतृत्व की बड़ी परीक्षा

इस रैली ने राहुल गांधी को विपक्ष की राजनीति में एक बार फिर प्रमुख भूमिका निभाने का अवसर दिया है। लोकसभा में नेता प्रतिपक्ष के रूप में उनकी जिम्मेदारी केवल सरकार की आलोचना करना नहीं, बल्कि राष्ट्रीय मुद्दों पर वैकल्पिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करना भी है। संसद से लेकर सड़क तक लोकतंत्र और संविधान की रक्षा का मुद्दा उठाना उनकी राजनीतिक रणनीति का महत्वपूर्ण हिस्सा बन चुका है। लेकिन राहुल गांधी के सामने सबसे बड़ी चुनौती इस आंदोलन को निरंतरता देना है। क्या वह अलग-अलग राज्यों के विपक्षी दलों को एक साझा कार्यक्रम पर एकजुट रख पाएंगे? क्या वह चुनाव आयोग से जुड़े सवालों को ठोस दस्तावेजों और तथ्यों के आधार पर

आगे बढ़ाएंगे? क्या कांग्रेस अपने संगठन को गांव, कस्बे और बूथ स्तर तक सक्रिय कर पाएगी? ये ऐसे सवाल हैं जिनके जवाब आने वाले महीनों में दिखाई देंगे। कांग्रेस के लिए यह भी जरूरी है कि वह केवल गांधी परिवार के नेतृत्व पर निर्भर रहने के बजाय प्रदेशों में मजबूत नेतृत्व तैयार करे। मध्यप्रदेश, राजस्थान, छत्तीसगढ़, उत्तर प्रदेश और महाराष्ट्र जैसे राज्यों में संगठन को सक्रिय करना होगा। जनता के बीच जाकर उसके वास्तविक मुद्दों पर संघर्ष करना होगा। केवल दिल्ली के रामलीला मैदान में भीड़ जुटाने से लोकतांत्रिक आंदोलन की सफलता सुनिश्चित नहीं हो सकती।

आने वाले चुनावों पर भी पड़ेगा असर

2026 और 2027 के आगामी विधानसभा चुनावों की पृष्ठभूमि में इस रैली का राजनीतिक महत्व और बढ़ जाता है। उत्तर प्रदेश, पंजाब और उत्तराखंड जैसे राज्यों में विपक्ष मतदाता सूची, चुनावी पारदर्शिता और संविधान के मुद्दों को चुनावी बहस का हिस्सा बनाने की कोशिश करेगा। इंडिया गठबंधन के लिए यह आंदोलन अपने सहयोगी दलों को एकजुट रखने का भी माध्यम बन सकता है। भाजपा के लिए भी यह चुनौती है कि वह विपक्ष के आरोपों का जवाब केवल राजनीतिक भाषणों से न दे, बल्कि मतदाता सूची और चुनावी प्रक्रिया से संबंधित सभी सवालों पर पारदर्शिता सुनिश्चित करे। यदि सरकार और चुनाव आयोग जनता की शंकाओं का समाधान करने में सफल रहते हैं तो लोकतांत्रिक संस्थाओं में विश्वास मजबूत होगा। लेकिन यदि सवालों को लगातार राजनीतिक आरोप बताकर टाला जाता है तो अविश्वास की स्थिति और गहरी हो सकती है। यह भी जरूरी है कि विपक्ष अपने आरोपों को प्रमाणित करने की जिम्मेदारी समझे। लोकतंत्र में किसी भी संस्था पर गंभीर आरोप लगाना आसान है, लेकिन उन आरोपों को तथ्यों के साथ साबित करना उतना ही आवश्यक है। इसी तरह सत्ता पक्ष को भी आलोचना को लोकतंत्र विरोधी बताने के बजाय उसका जवाब देना चाहिए।

लोकतंत्र बचाने की जिम्मेदारी केवल विपक्ष की नहीं

दिल्ली की लोकतंत्र बचाओ रैली ने देश के सामने एक महत्वपूर्ण सवाल खड़ा किया है कि भारतीय लोकतंत्र की वास्तविक ताकत क्या है? क्या लोकतंत्र केवल हर पांच साल में चुनाव कराने का नाम है या इसके लिए संस्थाओं की स्वतंत्रता, न्यायपालिका की निष्पक्षता, मीडिया की स्वतंत्रता, नागरिक अधिकारों की सुरक्षा और विपक्ष की प्रभावी भूमिका भी जरूरी है? वास्तव में लोकतंत्र इन सभी स्तंभों के संतुलन से मजबूत होता है। संसद में सरकार के पास बहुमत हो सकता है, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि उसे हर निर्णय पर सवालों से छूट मिल जाए। चुनाव आयोग संवैधानिक संस्था है, लेकिन इसका अर्थ यह भी नहीं कि उसकी कार्यप्रणाली पर सवाल नहीं उठाए जा सकते। इसी तरह विपक्ष को सरकार का विरोध करने का अधिकार है, लेकिन उसे भी अपने आरोपों की जिम्मेदारी लेनी होगी। रामलीला मैदान की रैली का महत्व इसी लोकतांत्रिक बहस में छिपा है। राहुल गांधी ने इस मंच से वोट, संविधान और नागरिक अधिकारों को लेकर जो सवाल उठाए हैं, उनका जवाब राजनीतिक नारों से नहीं, बल्कि पारदर्शी व्यवस्था और ठोस कार्रवाई से मिलना चाहिए। कुल मिलाकर दिल्ली की यह रैली राहुल गांधी के लिए राजनीतिक शक्ति प्रदर्शन से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। इसने विपक्ष को एक साझा मुद्दा दिया है और केंद्र सरकार के सामने चुनावी पारदर्शिता को लेकर जवाबदेही का सवाल खड़ा किया है। अब देखना यह होगा कि रामलीला मैदान से उठी आवाज संसद, न्यायिक संस्थाओं और देश के गांव-कस्बों तक कितनी प्रभावी ढंग से पहुंचती है। लोकतंत्र किसी एक नेता, पार्टी या सरकार की जागीर नहीं है। इसकी असली ताकत देश का नागरिक और उसका मताधिकार है। यदि वोट की विश्वसनीयता पर सवाल उठते हैं तो उनका समाधान होना चाहिए। यदि संवैधानिक संस्थाओं पर सवाल उठते हैं तो उन्हें पारदर्शिता से जवाब देना चाहिए। यही लोकतंत्र की असली कसौटी है। राहुल गांधी की दिल्ली रैली की सफलता का अंतिम पैमाना भी यही होगा कि क्या वह जनता के इस विश्वास को मजबूत करने में सफल होती है कि देश में हर नागरिक का वोट समान महत्व रखता है और संविधान से ऊपर कोई नहीं है।

विपक्ष को सरकार का विरोध करने का अधिकार है, लेकिन उसे भी अपने आरोपों की जिम्मेदारी लेनी होगी। रामलीला मैदान की रैली का महत्व इसी लोकतांत्रिक बहस में छिपा है। राहुल गांधी ने इस मंच से वोट, संविधान और नागरिक अधिकारों को लेकर जो सवाल उठाए हैं, उनका जवाब राजनीतिक नारों से नहीं, बल्कि पारदर्शी व्यवस्था और ठोस कार्रवाई से मिलना चाहिए। कुल मिलाकर दिल्ली की यह रैली राहुल गांधी के लिए राजनीतिक शक्ति प्रदर्शन से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। इसने विपक्ष को एक साझा मुद्दा दिया है और केंद्र सरकार के सामने चुनावी पारदर्शिता को लेकर जवाबदेही का सवाल खड़ा किया है।

मुख्यमंत्री साय सरकार ने छत्तीसगढ़ में किसान कल्याण को दी नई गति

धान के दाम से लेकर कृषि विविधीकरण तक सरकार के बड़े कदम



छत्तीसगढ़ को धान का कटोरा कहा जाता है। यहां की अर्थव्यवस्था, ग्रामीण जीवन और सामाजिक संरचना में खेती-किसानी की महत्वपूर्ण भूमिका है। प्रदेश के किसानों की मेहनत और कृषि उत्पादन राज्य की आर्थिक प्रगति का आधार हैं। मुख्यमंत्री डॉ. विष्णुदेव साय के नेतृत्व में राज्य सरकार ने किसान कल्याण को अपनी प्राथमिकताओं में शामिल करते हुए कृषि को लाभकारी बनाने, किसानों की आय बढ़ाने, कृषि लागत कम करने और ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूत करने के लिए अनेक पहल की हैं। सरकार की नीतियों में धान उत्पादक किसानों को उचित मूल्य दिलाने के साथ खेती को आधुनिक, विविधतापूर्ण और तकनीक आधारित बनाने पर विशेष जोर दिखाई देता है। सरकार की किसान केंद्रित नीतियों का प्रमुख आधार कृषक उन्नति योजना है। इस योजना के माध्यम से किसानों को न्यूनतम समर्थन मूल्य के अतिरिक्त अंतर राशि उपलब्ध कराकर उनकी उपज का प्रभावी मूल्य ३१०० रुपये प्रति क्विंटल सुनिश्चित करने का प्रयास किया गया है। इससे किसानों को बाजार मूल्य के उतार-चढ़ाव से राहत देने और कृषि कार्यों के लिए आर्थिक संसाधन उपलब्ध कराने में मदद मिली है।

विजया पाठक

मुख्यमंत्री विष्णुदेव साय की सरकार ने कृषक उन्नति योजना को किसान कल्याण के प्रमुख माध्यम के रूप में आगे बढ़ाया है। खरीफ विपणन वर्ष 2025-26 में प्रदेश में 25 लाख 24 हजार से अधिक किसानों से 141.04 लाख मीट्रिक टन धान का उपार्जन किया गया। सरकार ने समर्थन मूल्य और 3100 रुपये प्रति क्विंटल की प्रभावी दर के बीच की अंतर राशि के भुगतान के लिए लगभग 10 हजार करोड़ रुपये जारी करने का निर्णय लिया। 28 फरवरी 2026 को बिलासपुर जिले के रहांगी में आयोजित किसान सम्मेलन में मुख्यमंत्री ने 25.28 लाख किसानों के बैंक खातों में कृषक उन्नति योजना के अंतर्गत 10,324 करोड़ रुपये से अधिक की राशि अंतरित की। इसके साथ ही पिछले दो वर्षों में इस योजना के माध्यम से किसानों को दी गई कुल अंतर राशि लगभग 35 हजार करोड़ रुपये तक पहुंचने की बात सरकार ने कही है। यह राशि किसानों के लिए खेती की अगली तैयारी, कृषि उपकरणों, खाद-बीज और घरेलू जरूरतों को पूरा करने में सहायक बन रही है।

सरकार ने समर्थन मूल्य और 3100 रूपये प्रति क्विंटल की प्रभावी दर के बीच की अंतर राशि के भुगतान के लिए लगभग 10 हजार करोड़ रूपये जारी करने का निर्णय लिया।

3100 रुपये प्रति क्विंटल की दर से धान खरीदी

छत्तीसगढ़ में धान खरीदी किसानों के लिए सबसे महत्वपूर्ण आर्थिक गतिविधियों में से एक है। सरकार ने प्रति एकड़ अधिकतम 21 क्विंटल धान की खरीदी की व्यवस्था के साथ 3100 रुपये प्रति क्विंटल की प्रभावी दर का प्रावधान किया है। इससे धान उत्पादक किसानों को उनकी उपज का बेहतर मूल्य उपलब्ध कराने की दिशा में काम किया जा रहा है। आगामी खरीफ विपणन वर्ष 2026-27 के लिए भी सरकार ने धान खरीदी की व्यापक तैयारियां शुरू की हैं। 15 नवंबर 2026 से 15 जनवरी 2027 तक खरीदी प्रस्तावित है। इस व्यवस्था के तहत 27.50 लाख से अधिक किसानों को लाभ पहुंचाने का लक्ष्य रखा गया है। धान

खरीदी की प्रक्रिया को सरल बनाने के लिए 360 नए उपार्जन केंद्र स्वीकृत किए गए हैं। इससे प्रदेश में खरीदी केंद्रों की संख्या 2740 से बढ़कर 3100 हो जाएगी। नए केंद्रों से किसानों को दूरस्थ समितियों तक धान ले जाने की परेशानी और परिवहन खर्च कम होने की उम्मीद है।

डिजिटल व्यवस्था से पारदर्शी होगी खरीदी

सरकार धान खरीदी में तकनीक के उपयोग को भी बढ़ावा दे रही है। टोकन व्यवस्था को सुविधाजनक बनाने के लिए तुंहर टोकन मोबाइल एप के माध्यम से घर बैठे टोकन प्राप्त करने की सुविधा उपलब्ध कराने की पहल की गई है। एग्रीस्टैक आईडी, डिजिटल फसल सर्वेक्षण और बायोमेट्रिक सत्यापन जैसी व्यवस्थाओं के माध्यम से पंजीयन और खरीदी प्रक्रिया को अधिक पारदर्शी बनाने पर जोर दिया जा रहा है। इसका उद्देश्य वास्तविक किसानों तक सरकारी योजनाओं का लाभ पहुंचाना और उपार्जन केंद्रों पर अनावश्यक भीड़ तथा इंतजार कम करना है।

सरकार का उद्देश्य किसानों को उत्पादन लागत में राहत देना और कृषि गतिविधियों को आर्थिक रूप से टिकाऊ बनाना है।

कृषि बजट में 10 हजार करोड़ का प्रावधान

किसानों के आर्थिक सशक्तीकरण के लिए वित्तीय वर्ष 2026-27 के बजट में कृषक उन्नति योजना के लिए 10 हजार करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया है। इसके साथ ही कृषि पंपों के लिए विद्युत सब्सिडी पर 5500 करोड़ रुपये निर्धारित किए गए हैं। सरकार का उद्देश्य किसानों को उत्पादन लागत में राहत देना और कृषि गतिविधियों को आर्थिक रूप से टिकाऊ बनाना है। कृषि क्षेत्र में अनुसंधान, उन्नत बीज, आधुनिक तकनीक और कृषि शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय के लिए 250 करोड़ रुपये तथा उद्यानिकी विश्वविद्यालय के लिए 170 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया है। एकीकृत वाटरशेड प्रबंधन कार्यक्रम के लिए 170 करोड़ और एकीकृत उद्यानिकी विकास मिशन के लिए 150 करोड़ रुपये निर्धारित किए गए हैं। इन प्रावधानों से कृषि क्षेत्र में दीर्घकालीन विकास की संभावनाओं को मजबूती देने का प्रयास है।



धान के साथ दूसरी फसलों को भी

प्रोत्साहन

छत्तीसगढ़ की कृषि व्यवस्था में धान का महत्वपूर्ण स्थान है, लेकिन किसानों की आय में स्थायी वृद्धि के लिए फसल विविधीकरण भी आवश्यक है। इसी दिशा में सरकार ने कृषक उन्नति योजना में बदलाव करते हुए धान के लिए इनपुट सहायता को प्रति क्विंटल के स्थान पर प्रति एकड़ के आधार पर देने की व्यवस्था को मंजूरी दी है। इसका उद्देश्य किसानों को दलहन, तिलहन, उद्यानिकी और अन्य वैकल्पिक फसलों की ओर प्रोत्साहित करना है। प्रदेश में रबी फसलों का रकबा बढ़ाने, दलहन और तिलहन उत्पादन को प्रोत्साहित करने तथा आधुनिक कृषि पद्धतियों को अपनाने पर भी जोर दिया जा रहा है। कृषि विशेषज्ञों की सहायता, मृदा परीक्षण, उन्नत बीज और सिंचाई सुविधाओं के विस्तार से किसानों को खेती में नए प्रयोग करने के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है।

पशुपालन और डेयरी से किसानों की अतिरिक्त आय

किसानों की आर्थिक स्थिति मजबूत करने के लिए केवल फसल उत्पादन पर निर्भर रहना पर्याप्त नहीं है। पशुपालन, दुग्ध



उत्पादन, मत्स्य पालन और उद्यानिकी जैसी गतिविधियां ग्रामीण परिवारों की आय बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं। सरकार ने एकीकृत डेयरी विकास योजना के लिए वित्तीय वर्ष 2026-27 में 90 करोड़ रुपये का प्रावधान किया है। इससे दुग्ध उत्पादन, पशुपालकों को सुविधाएं, दुग्ध संग्रहण और प्रसंस्करण व्यवस्था को प्रोत्साहित करने की दिशा में काम किया जा रहा है। सहकारी संस्थाओं और ग्रामीण दुग्ध उत्पादक समूहों की भागीदारी बढ़ाकर किसानों को दूध के लिए बेहतर बाजार उपलब्ध कराने की संभावनाएं विकसित की जा रही हैं। गन्ना उत्पादकों के लिए भी 90 करोड़ रुपये का बोनस प्रावधान किया गया है। इससे कृषि आधारित ग्रामीण अर्थव्यवस्था को विविधता देने का प्रयास है।

सिंचाई, बिजली और कृषि अधोसंरचना पर जोर

खेती की लागत कम करने और उत्पादन बढ़ाने के लिए सिंचाई तथा बिजली की उपलब्धता महत्वपूर्ण है। राज्य सरकार ने कृषि पंपों को बिजली सब्सिडी देने के लिए बजट में 5500 करोड़ रुपये रखे हैं। इसके माध्यम से किसानों को सिंचाई के लिए आर्थिक राहत उपलब्ध कराने का प्रयास है। इसके साथ ही जल संरक्षण, वाटरशेड विकास और उद्यानिकी आधारित गतिविधियों को बढ़ावा देने की योजनाएं बनाई गई हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि आधारित लघु उद्योगों और प्रसंस्करण इकाइयों को प्रोत्साहित करने से





स्थानीय स्तर पर रोजगार के अवसर भी विकसित हो सकते हैं। सरकार की प्राथमिकता है कि किसान अपनी उपज का केवल प्राथमिक उत्पादन ही नहीं करें, बल्कि उसका प्रसंस्करण और मूल्य संवर्धन करके अधिक लाभ प्राप्त करें।

किसान की समृद्धि से गांवों का विकास

छत्तीसगढ़ सरकार की किसान कल्याण संबंधी पहलों का एक महत्वपूर्ण पहलू ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूत करना भी है। किसान की आमदनी बढ़ने से ग्रामीण बाजारों में मांग बढ़ती है। इससे कृषि उपकरण, खाद-बीज, परिवहन, व्यापार और छोटे उद्योगों से जुड़े लोगों को भी लाभ मिलता है। महिला स्व-सहायता समूहों को कृषि, खाद्य प्रसंस्करण और पशुपालन से जोड़ने की संभावनाएं भी ग्रामीण विकास को नई दिशा दे रही हैं।प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि के माध्यम से पात्र किसानों को केंद्र सरकार की ओर से प्रतिवर्ष छह हजार रुपये की सहायता भी मिल रही है। राज्य की योजनाओं और केंद्र सरकार की किसान हितैषी पहलों के समन्वय से किसानों को आर्थिक संबल देने का प्रयास किया जा रहा है।

कृषि को लाभकारी बनाने की दिशा में आगे बढ़ता छत्तीसगढ़

मुख्यमंत्री विष्णुदेव साय के नेतृत्व में छत्तीसगढ़ सरकार ने किसान कल्याण को केवल धान खरीदी तक सीमित न रखते हुए कृषि के व्यापक विकास से जोड़ने की पहल की है। कृषक उन्नति योजना, बेहतर समर्थन मूल्य, उपार्जन केंद्रों का विस्तार, कृषि पंपों पर सब्सिडी, फसल विविधीकरण, डेयरी विकास और कृषि अनुसंधान में निवेश इसी दिशा के महत्वपूर्ण कदम हैं। हालांकि कृषि के सामने जलवायु परिवर्तन, लागत में वृद्धि, बाजार की अनिश्चितता, छोटे जोत वाले किसानों की चुनौतियां और फसल विविधीकरण जैसी समस्याएं भी हैं। इनका स्थायी समाधान सिंचाई सुविधाओं के विस्तार, आधुनिक तकनीक, मजबूत विपणन व्यवस्था और कृषि आधारित उद्योगों के विकास से ही संभव है।

यूपी चुनाव 2027...

योगी को देना होगा फ्रीहैंड, संगठन और सत्ता के बीच संतुलन की होगी असली परीक्षा



विजया पाठक

उत्तर प्रदेश विधानसभा चुनाव 2027 की राजनीतिक बिसात बिछनी शुरू हो गई है। देश की राजनीति में उत्तर प्रदेश का महत्व किसी से छिपा नहीं है। लोकसभा की सर्वाधिक सीटों वाला यह राज्य केंद्र की सत्ता के समीकरणों को भी प्रभावित करता है। यही कारण है कि उत्तर प्रदेश का अगला विधानसभा चुनाव केवल राज्य सरकार के पांच साल के कामकाज का मूल्यांकन नहीं होगा, बल्कि भाजपा के केंद्रीय नेतृत्व,

> **"इस चुनाव में सबसे महत्वपूर्ण सवाल यही है कि क्या भाजपा नेतृत्व मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ को पूरी राजनीतिक और प्रशासनिक स्वतंत्रता देगा?"**

मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ की राजनीतिक भूमिका और पार्टी के संगठनात्मक ढांचे की भी परीक्षा बनेगा। इस चुनाव में सबसे महत्वपूर्ण सवाल यही है कि क्या भाजपा नेतृत्व मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ को पूरी राजनीतिक और प्रशासनिक स्वतंत्रता देगा? योगी आदित्यनाथ उत्तर प्रदेश की राजनीति में एक अलग पहचान रखते हैं। उनकी राजनीति का आधार हिंदुत्व, कानून-व्यवस्था, प्रशासनिक सख्ती और विकास के दावों के इर्द-गिर्द रहा है। भाजपा ने

2022 में उनके नेतृत्व में लगातार दूसरी बार सत्ता हासिल की थी। लेकिन 2024 के लोकसभा चुनाव में उत्तर प्रदेश में पार्टी का प्रदर्शन अपेक्षा से कमजोर रहा। इसके बाद संगठन और सरकार के बीच बेहतर तालमेल की जरूरत लगातार चर्चा में रही। अब 2027 के विधानसभा चुनाव को देखते हुए यह सवाल और महत्वपूर्ण हो गया है कि चुनाव की कमान किसके हाथ में होगी और फैसले लेने की वास्तविक स्वतंत्रता किसे



मिलेगी?

योगी के नेतृत्व पर भरोसा, लेकिन फैसलों में स्वतंत्रता कितनी?

भाजपा के उत्तर प्रदेश प्रभारी विनोद तावड़े ने 30 अक्टूबर 2026 को पार्टी की प्रदेश कार्यसमिति की बैठक में स्पष्ट किया कि 2027 का विधानसभा चुनाव योगी आदित्यनाथ को पार्टी का चेहरा बनाकर लड़ा जाएगा। यह बयान राजनीतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इससे मुख्यमंत्री के नेतृत्व को लेकर पार्टी की सार्वजनिक स्थिति सामने आती है। लेकिन केवल चुनावी चेहरा घोषित कर देना और उन्हें फैसले लेने की पूरी स्वतंत्रता देना, दोनों अलग-अलग बातें हैं। मुख्यमंत्री को फ्रीहैंड देने का अर्थ यह नहीं होना चाहिए कि पार्टी संगठन की भूमिका समाप्त कर दी जाए। इसका अर्थ यह है कि सरकार की नीतियों, प्रशासनिक नियुक्तियों, विकास योजनाओं और जनहित से जुड़े फैसलों में मुख्यमंत्री को स्पष्ट अधिकार और जिम्मेदारी मिले। यदि सरकार की जवाबदेही मुख्यमंत्री के पास है तो फैसलों की प्रक्रिया में भी उनकी भूमिका निर्णायक होनी चाहिए। उत्तर प्रदेश जैसे विशाल राज्य में शासन चलाना आसान काम नहीं है। यहां क्षेत्रीय असमानताएं, जातीय समीकरण, धार्मिक विविधता, बेरोजगारी, किसानों की समस्याएं और शहरी-ग्रामीण विकास की अलग-अलग चुनौतियां हैं। इन सबका समाधान केवल चुनावी सभाओं और संगठनात्मक बैठकों से संभव नहीं है। इसके लिए मजबूत प्रशासनिक निर्णय और जवाबदेही की व्यवस्था आवश्यक है।

2024 के लोकसभा चुनाव ने दिया था आत्ममंथन का संदेश

2022 के विधानसभा चुनाव में भाजपा ने 403 में से 255 सीटें जीतकर सत्ता में वापसी की थी। समाजवादी पार्टी को 111 सीटें मिली थीं। लेकिन 2024 के लोकसभा चुनाव में उत्तर प्रदेश में भाजपा की सीटें घटकर 33 रह गईं, जबकि समाजवादी पार्टी ने 37 सीटों पर जीत दर्ज की। कांग्रेस को छह सीटें मिलीं। इन नतीजों ने भाजपा के सामने यह सवाल खड़ा किया कि विधानसभा चुनाव में मिली सफलता के बावजूद लोकसभा चुनाव में पार्टी का जनाधार कई क्षेत्रों में क्यों प्रभावित हुआ। इन परिणामों को केवल किसी एक नेता या सरकार की विफलता के रूप में देखना उचित नहीं होगा। चुनावी परिणामों के पीछे स्थानीय उम्मीदवारों का चयन, सामाजिक समीकरण, संविधान और आरक्षण से जुड़े मुद्दे, बेरोजगारी, ग्रामीण असंतोष और

विपक्ष की रणनीति जैसे कई कारक रहे। लेकिन इतना स्पष्ट हुआ कि उत्तर प्रदेश में भाजपा को अपने संगठन और सरकार के कामकाज का जमीनी मूल्यांकन करना होगा। 2027 की तैयारी में सबसे जरूरी है कि 2024 के परिणामों से निकले सवालों को गंभीरता से लिया जाए। यदि किसी क्षेत्र में जनता की नाराजगी है तो उसका कारण समझा जाए। यदि विधायक जनता से कटे हुए हैं तो उनकी जवाबदेही तय हो। यदि सरकारी योजनाओं का लाभ पात्र लोगों तक नहीं पहुंच रहा है तो प्रशासनिक व्यवस्था में सुधार किया जाए। केवल चुनावी नारों से इन समस्याओं का समाधान नहीं हो सकता।

संगठन और सरकार के बीच तालमेल क्यों जरूरी ?

भाजपा के सामने एक बड़ी चुनौती संगठन और सरकार के बीच बेहतर समन्वय बनाए रखने की है। जुलाई और सितंबर 2026 में पार्टी की बैठकों में सरकार तथा संगठन के बीच तालमेल को मजबूत करने पर जोर दिया गया। इन बैठकों में मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ, दोनों उपमुख्यमंत्री, प्रदेश अध्यक्ष और केंद्रीय संगठन के वरिष्ठ पदाधिकारी शामिल हुए। यह घटनाक्रम बताता है कि भाजपा नेतृत्व 2027 के चुनाव को लेकर संगठनात्मक तैयारियों को गंभीरता से आगे बढ़ा रहा है। लेकिन तालमेल का अर्थ यह नहीं होना चाहिए कि सरकार के हर निर्णय को राजनीतिक संगठन की स्वीकृति पर निर्भर कर दिया जाए। सरकार की प्राथमिकता जनता की समस्याओं का समाधान होना चाहिए, जबकि संगठन की जिम्मेदारी सरकार के कामकाज का फीडबैक जनता तक पहुंचाना और जनता की शिकायतें सरकार तक पहुंचाना है। दोनों के बीच जिम्मेदारियों का स्पष्ट बंटवारा होना आवश्यक है। मुख्यमंत्री को प्रशासनिक फैसले लेने की स्वतंत्रता मिले और संगठन को सरकार के कामकाज पर निष्पक्ष प्रतिक्रिया देने का अवसर। यदि संगठन और सरकार के बीच प्रतिस्पर्धा या अधिकारों को लेकर असमंजस बना रहता है तो उसका असर शासन की गति पर पड़ सकता है।

बेरोजगारी और युवाओं की नाराजगी सबसे बड़ी चुनौती

उत्तर प्रदेश की राजनीति में युवा मतदाता महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। रोजगार, भर्ती परीक्षाओं की पारदर्शिता, सरकारी नौकरियों में समयबद्ध नियुक्तियां और निजी क्षेत्र में अवसर युवाओं के प्रमुख सवाल हैं। सरकार की ओर से रोजगार और निवेश को लेकर कई घोषणाएं की गई हैं, लेकिन इन घोषणाओं का वास्तविक लाभ कितने युवाओं तक पहुंचा है, इसका मूल्यांकन जरूरी है। भर्ती प्रक्रियाओं में देरी, परीक्षा संबंधी विवाद और नियुक्तियों को लेकर शिकायतें युवाओं में असंतोष पैदा कर सकती हैं। सरकार को यह सुनिश्चित करना होगा कि भर्ती परीक्षाएं पारदर्शी हों, रिक्त पदों की जानकारी सार्वजनिक हो और चयन प्रक्रिया निर्धारित समयसीमा में पूरी की जाए। योगी आदित्यनाथ को प्रशासनिक स्तर पर ऐसे फैसले लेने की स्वतंत्रता होनी चाहिए, जिनसे रोजगार और कौशल विकास से जुड़ी योजनाओं का क्रियान्वयन तेज हो। केवल निवेश सम्मेलन और उद्योग लगाने की घोषणाएं पर्याप्त नहीं हैं। प्रदेश के



युवाओं को रोजगार के वास्तविक अवसर मिलने चाहिए।

किसानों और ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर देना होगा ध्यान

उत्तर प्रदेश की राजनीति में किसान हमेशा महत्वपूर्ण रहे हैं। पश्चिमी उत्तर प्रदेश से लेकर पूर्वांचल और बुंदेलखंड तक किसानों की समस्याएं अलग-अलग हैं। गन्ना किसानों का भुगतान, सिंचाई, बिजली, फसल का उचित मूल्य, खाद और बीज की



उपलब्धता तथा आवारा पशुओं की समस्या ग्रामीण क्षेत्रों में महत्वपूर्ण मुद्दे हैं। किसानों को लेकर सरकार की नीतियों का मूल्यांकन केवल बजट या घोषणाओं से नहीं किया जा सकता। यह देखना जरूरी है कि गन्ना भुगतान कितनी समयसीमा में हो रहा है, किसानों को उनकी उपज का मूल्य समय पर मिल रहा है या नहीं और सरकारी योजनाओं का लाभ छोटे तथा सीमांत किसानों तक पहुंच रहा है या नहीं। मुख्यमंत्री को इन मुद्दों पर विभागीय अधिकारियों की जवाबदेही तय करने और आवश्यक प्रशासनिक बदलाव करने की स्वतंत्रता मिलनी चाहिए। ग्रामीण अर्थव्यवस्था मजबूत होगी तो उसका प्रभाव प्रदेश के समग्र विकास पर भी दिखाई देगा।

जातीय समीकरण और सामाजिक संतुलन की चुनौती

उत्तर प्रदेश में चुनाव केवल विकास के मुद्दों पर नहीं लड़े जाते। यहां सामाजिक और जातीय समीकरणों का भी महत्वपूर्ण प्रभाव रहता है। पिछड़े वर्ग, दलित, सवर्ण, अति पिछड़े और अन्य सामाजिक समूहों की राजनीतिक अपेक्षाएं अलग-अलग हैं। 2024 के लोकसभा चुनाव के बाद भाजपा के लिए सामाजिक प्रतिनिधित्व और सभी वर्गों तक पहुंच का सवाल और महत्वपूर्ण हो गया है। समाजवादी पार्टी ने पीडीए यानी पिछड़ा, दलित और अल्पसंख्यक की राजनीतिक अवधारणा के माध्यम से सामाजिक गठबंधन बनाने का प्रयास किया। भाजपा के सामने अपनी सामाजिक पहुंच बनाए रखने और विभिन्न वर्गों में विश्वास कायम रखने की चुनौती है। इसका समाधान केवल जातीय प्रतिनिधित्व के आधार पर पद बांटने में नहीं है। सरकार को शिक्षा, रोजगार, सामाजिक सुरक्षा, स्थानीय विकास और प्रशासनिक न्याय के माध्यम से सभी वर्गों का विश्वास अर्जित करना होगा। मुख्यमंत्री को ऐसे फैसले लेने की स्वतंत्रता होनी चाहिए, जो सामाजिक संतुलन और विकास दोनों को ध्यान में रखें।

कानून-व्यवस्था की छवि और प्रशासनिक जवाबदेही

योगी सरकार की पहचान के प्रमुख मुद्दों में कानून-व्यवस्था भी शामिल है। सरकार अपराध नियंत्रण और माफिया के खिलाफ कार्रवाई को अपनी उपलब्धि के रूप में प्रस्तुत करती रही है। लेकिन किसी भी राज्य

में कानून-व्यवस्था का मूल्यांकन केवल बड़े अपराधियों पर कार्रवाई से नहीं किया जा सकता। महिलाओं की सुरक्षा, साइबर अपराध, स्थानीय स्तर पर पुलिस की जवाबदेही, थानों में शिकायतों का निस्तारण और न्यायिक प्रक्रिया की गति भी उतनी ही महत्वपूर्ण है। यदि किसी निर्दोष को परेशानी होती है या किसी प्रभावशाली व्यक्ति के दबाव में कार्रवाई प्रभावित होती है तो यह प्रशासनिक व्यवस्था के लिए गंभीर सवाल है। कानून का शासन तभी मजबूत माना जाएगा जब वह सभी नागरिकों पर समान रूप से लागू हो। मुख्यमंत्री को पुलिस और प्रशासनिक व्यवस्था में जवाबदेही तय करने का अधिकार होना चाहिए। साथ ही, प्रशासनिक कार्रवाई कानून और संवैधानिक प्रक्रियाओं के अनुरूप होनी चाहिए। यही व्यवस्था सरकार के दावों और जनता के अनुभव के बीच भरोसे का अंतर कम कर सकती है।

दिल्ली और लखनऊ के बीच भरोसे का सवाल

उत्तर प्रदेश में भाजपा की राजनीति का एक महत्वपूर्ण पहलू केंद्र और राज्य नेतृत्व के बीच तालमेल भी है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी, केंद्रीय गृह मंत्री अमित शाह और पार्टी के राष्ट्रीय नेतृत्व की भूमिका राष्ट्रीय राजनीति तथा चुनावी रणनीति में महत्वपूर्ण है। वहीं उत्तर प्रदेश के प्रशासन और स्थानीय राजनीतिक परिस्थितियों की प्रत्यक्ष जिम्मेदारी मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ के पास है। दोनों स्तरों के बीच संवाद और समन्वय आवश्यक है। लेकिन राज्य की स्थानीय परिस्थितियों को समझने और उनके अनुरूप निर्णय लेने में मुख्यमंत्री की भूमिका केंद्रीय होनी चाहिए। दिल्ली से राजनीतिक दिशा मिल सकती है, लेकिन लखनऊ में शासन चलाने की जिम्मेदारी राज्य नेतृत्व की ही है। योगी को फ्रीहैंड देने का सवाल इसी भरोसे से जुड़ा है। यदि पार्टी नेतृत्व उन्हें चुनाव का चेहरा घोषित करता है तो उनके प्रशासनिक और राजनीतिक निर्णयों पर भी भरोसा दिखाना होगा। हालांकि इसका अर्थ पार्टी के सामूहिक नेतृत्व और संगठनात्मक अनुशासन को समाप्त करना नहीं है। लोकतांत्रिक राजनीतिक दल में संवाद, सामूहिक निर्णय और जवाबदेही तीनों जरूरी हैं।

मंत्रिमंडल और अधिकारियों की जिम्मेदारी भी तय हो

योगी सरकार के सामने एक और महत्वपूर्ण प्रश्न मंत्रिमंडल और प्रशासनिक व्यवस्था की कार्यक्षमता का है। बड़े राज्य में मुख्यमंत्री अकेले हर विभाग का संचालन नहीं कर सकते। मंत्रियों को अपने विभागों की जिम्मेदारी निभाने का अवसर मिलना चाहिए और उनके कामकाज का नियमित मूल्यांकन होना चाहिए। विभागों में योजनाओं की प्रगति, बजट का उपयोग, लंबित परियोजनाएं और जनता की शिकायतों के निस्तारण का सार्वजनिक मूल्यांकन किया जा सकता है। जिन विभागों का प्रदर्शन कमजोर हो, वहां सुधारात्मक कदम उठाए जाने चाहिए। अधिकारियों की जवाबदेही भी स्पष्ट होनी चाहिए। फ्रीहैंड का वास्तविक अर्थ यही है कि मुख्यमंत्री को काम करने की स्वतंत्रता के साथ परिणाम देने की जिम्मेदारी भी मिले। यदि अधिकारों का बंटवारा अस्पष्ट होगा तो असफलता की स्थिति में जिम्मेदारी तय करना कठिन हो जाएगा।

2027 का चुनाव केवल चेहरे की नहीं, कामकाज की परीक्षा

2027 के विधानसभा चुनाव में भाजपा के सामने अपनी सरकार के कामकाज का हिसाब देने की चुनौती होगी। विपक्ष बेरोजगारी, महंगाई, किसानों, सामाजिक प्रतिनिधित्व और स्थानीय समस्याओं को मुद्दा बनाएगा। भाजपा अपने विकास कार्यों, कानून-व्यवस्था और कल्याणकारी योजनाओं को जनता के सामने रखेगी। इस राजनीतिक मुकाबले में जनता का मूल्यांकन केवल बड़े नेताओं के भाषणों से नहीं, बल्कि अपने क्षेत्र में हुए वास्तविक बदलाव से भी होगा। योगी आदित्यनाथ को स्वतंत्रता देने का प्रश्न इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि उत्तर प्रदेश की जनता सरकार के मुखिया से जवाब मांगती है। लेकिन स्वतंत्रता के साथ पारदर्शिता, संवैधानिक मर्यादा और जवाबदेही भी जरूरी है। मुख्यमंत्री को फैसले लेने का अधिकार मिले, मंत्रियों और अधिकारियों को जिम्मेदारी मिले और संगठन को जमीनी फीडबैक देने की भूमिका मिले।

2027 की राजनीतिक चुनौती का समाधान किसी एक व्यक्ति को अधिक अधिकार देने भर से नहीं निकलेगा। इसके लिए मजबूत नेतृत्व, सक्रिय संगठन, जवाबदेह प्रशासन और जनता की समस्याओं के प्रति संवेदनशील सरकार की आवश्यकता होगी। भाजपा नेतृत्व के सामने असली सवाल यही है कि वह योगी आदित्यनाथ को केवल चुनावी चेहरा बनाकर रखता है या शासन और संगठन के बीच जिम्मेदारियों का ऐसा स्पष्ट ढांचा तैयार करता है, जिसमें मुख्यमंत्री को काम करने की वास्तविक स्वतंत्रता भी मिले और परिणामों के लिए जवाबदेही भी तय हो। उत्तर प्रदेश का मतदाता 2027 में सरकार के दावों और अपने अनुभव के आधार पर फैसला करेगा। इसलिए योगी को फ्रीहैंड देने की बहस का अंतिम पैमाना सत्ता के भीतर का राजनीतिक समीकरण नहीं, बल्कि शासन की गुणवत्ता, विकास का वास्तविक लाभ और जनता का भरोसा होना चाहिए।

आंदोलन के बदलते स्वरूप

रघु ठाकुर

अक्टूबर माह देश के बड़े जनआंदोलनों के जनक नेताओं के स्मृति का माह माना जा सकता है। महात्मा गांधी ने तो समूचे देश को जाति, धर्म, धन और सभी प्रकार के भेदभाव से ऊपर उठाकर एकजुट किया और 19वीं सदी में दुनिया की तत्कालीन महाशक्ति ब्रिटिश साम्राज्य को उपनिवेशों की आजादी के लिये लाचार किया था। महात्मा गांधी का आजादी का आंदोलन भारत की आजादी का भी था और दुनिया के उपनिवेशों के मन में आजादी की भूख को पल्लवित कर उन्हें आजादी के संघर्ष के लिये प्रेरित करने वाला भी था। लगभग सारी दुनिया के उपनिवेशों के लोगों ने महात्मा गांधी में उनके अहिंसा के विज्ञान और तरीकों में आजादी को देखा और इसलिये महात्मा गांधी समूची दुनिया में आजादी और नैतिक जीवन मूल्यों के सबसे बड़े मान्य शाश्वत प्रतीक है। डॉ. लोहिया ने जून 1946 में ही गोवा मुक्ति संग्राम की शुरुआत की थी। आजादी के बाद समूचे देश के गरीबों और आम लोगों को अहिंसक सिविल नाफरमानी के मार्ग पर चलने को प्रेरित किया, बल्कि महात्मा गांधी के सत्याग्रह को आगे भी बढ़ाया और उस परंपरा को जीवित रखा। तत्कालीन कांग्रेस सरकार और उनके समर्थक बौद्धिकों की यह राय थी कि आजादी के बाद अब देश में सत्याग्रह की कोई आवश्यकता नहीं है, परंतु लोहिया ने इस विचार का जोरदार खंडन किया और लोगों को समझाया कि राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का दिया हुआ सबसे बड़ा हथियार अहिंसक सिविल नाफरमानी है जो न केवल व्यवस्था के अन्याय से लड़ने की प्रेरणा देता है, बल्कि व्यक्ति को निर्भय भी

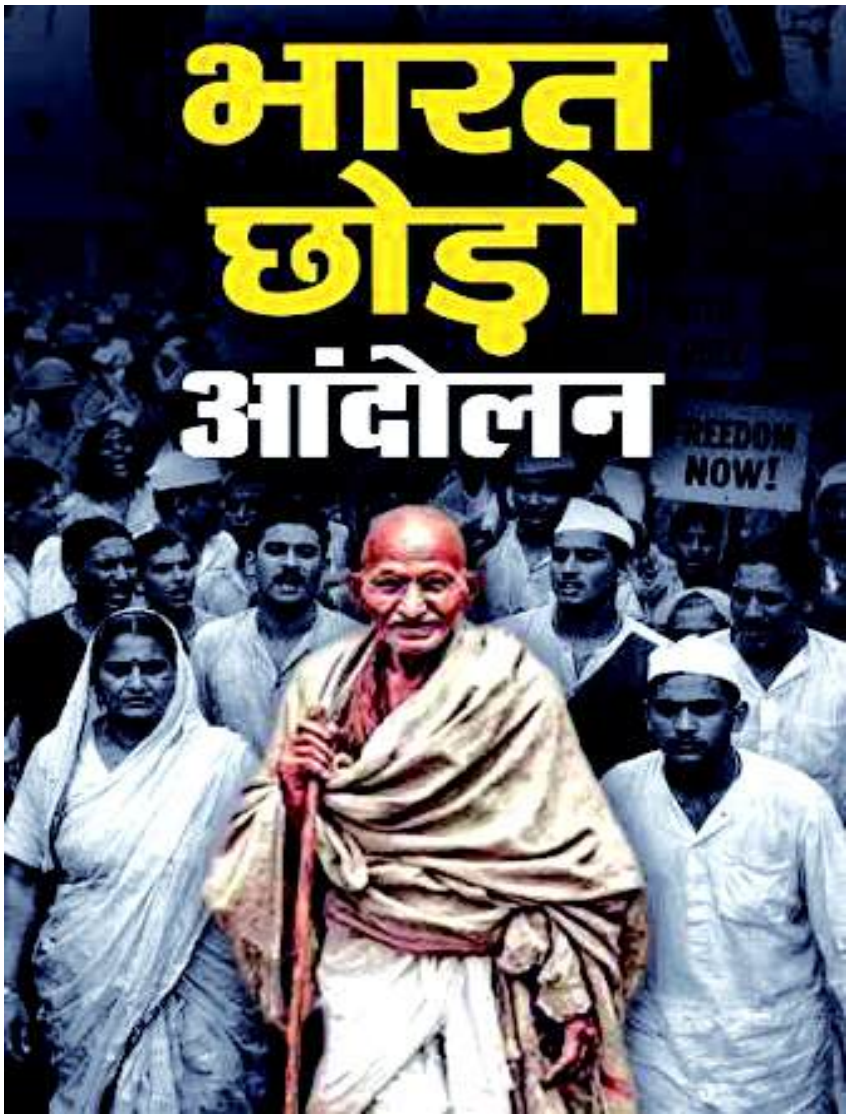

बनाता और आजादी को भी बचाता है। लोहिया ने आजादी और समता के लक्ष्य को एक साथ जोड़ा तथा सात क्रांतियों के रूप में बांधा था। 1974 में जेपी ने भी बिहार के छात्र आंदोलन की अगुवाई स्वीकार करते हुये उसे संपूर्ण क्रांति के आंदोलन के रूप में बदलने का प्रयास किया। उस दौर में शुरु हुये जनआंदोलन और राजनैतिक सत्ता आकांक्षाओं ने मिलकर इस आंदोलन में वैचारिक या राजनैतिक या अवसर की उम्मीद से सहभागिता की थी।

महात्मा गांधी के आजादी के आंदोलन



और जेपी के आंदोलन में बड़ा फर्क था। गांधी का आंदोलन देश के जन-धन का आंदोलन था और जेपी का आंदोलन अराजनैतिक होने के उपदेश से शुरू होकर राजनैतिक दलों की सत्ता प्राप्ति की आकांक्षा में बदल गया और अराजनैतिक से शुरू हुई यात्रा राजनैतिक दल के निर्माण यानि जनता पार्टी के निर्माण पर समाप्त हुई। इस आंदोलन का मौलिक रूप से कोई वैचारिक आधार नहीं था बल्कि यह एक गुजरात में महंगाई के मुददे से शुरू हुआ छात्र आंदोलन था जो बाद में वहां की सत्ता की दौड़ में पराजित राजनीति की सत्ता आकांक्षाओं का आंदोलन बन गया। जेपी के आंदोलन से भयभीत सरकार ने आपातकाल लगाया और फिर आपातकाल की मुक्ति के नाम पर एक ऐसा राजनैतिक दल उभरा जो विभिन्न प्रकार की परस्पर विरोधी विचारधाराओं का समूह था, तथा जो अपने जन्म से ही अपनी मृत्यु के लिये अभिसप्त था। इस आंदोलन और राजनैतिक दल की न कोई एक वैचारिक दृष्टि थी न ही कोई एक अंतरमन से स्वीकार्य नेतृत्व का केंद्र था। जनसंघ के मित्रों के लिये जेपी उतनी ही दूर तक स्वीकार थे जितनी दूर तक वे उनके आवरण में सत्ता हथिया सकते थे।

पिछले अप्रैल-मई के माह में भारत के सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश की नीट पेपर लीक से पीड़ित छात्रों के लिये कटु और गैर जरूरी टिप्पणी जिसमें छात्रों को कॉकरोच शब्द का इस्तेमाल किया था कि प्रतिक्रिया भारत में कम हुई परंतु अमेरिका में अधिक हुई और अमेरिका में कॉकरोच जनता पार्टी बन गयी। बहुत लोगों की राय में यह स्वप्रेरित घटना नहीं थी बल्कि एक प्रायोजित प्रयोग था। पेपर लीक कांड और उसके बाद पुनरू परीक्षा तथा परीक्षा परिणाम आने के बाद व लगभग ग्यारह लाख पचास हजार छात्रों के पास होने के बाद एक युवा साथी अमेरिका से भारत आये। उन्हें भारत सरकार ने जंतर मंतर दिल्ली में आंदोलन करने के लिये लाल कालीन बिछा दिया। पुलिस को बगैर किसी आवेदन और बगैर स्वीकृति के जंतर मंतर पर उनकी सभा हुई। दिल्ली पुलिस ने उन्हें पूरे आदर सम्मान के साथ आंदोलन करने दिया और वे अगले जून माह की 20 तारीख को पुनरू आंदोलन की घोषणा कर अपने घर पूना चले गये। उन्होंने कहा कि उनके माता-पिता को जान से मारने की धमकी दी गई थी, इसलिये उन्हें अपना घर छोड़कर अन्यत्र रहना पड़ रहा है। अब वे उन्हें लाकर अपने घर पर रखेंगे। महाराष्ट्र सरकार के एक मंत्री ने उनसे बैठक की, मुख्यमंत्री ने उनसे हालचाल जाना, परंतु किसी ने भी उनसे धमकी देने वाले का नाम और नंबर नहीं पूछा, क्योंकि इस पूछताछ से झूठ बेपर्दा हो सकता था। मीडिया ने भी उनके माता-पिता की धमकी की खबर जो प्रमुखता से प्रकाशित हुई थी, परंतु किसी ने भी उनसे यह नहीं पूछा कि आखिर धमकी देने वाले कौन थे, ये घटनायें अपने आपसे काफी कुछ संकेत देती हैं? कारपोरेट और सत्ताधारी लॉबी उन्हें एक और केजरीवाल

के रूप में खड़ा करना चाहती है। दुनिया के कारपोरेट से भारत के काफी स्वयंसेवी नाम के संगठन जीवन रस पाते हैं। उनमें दक्षिणपंथी भी हैं, वामपंथी भी हैं, कांग्रेसपंथी भी हैं और कुछ अन्य भी।

अमेरिका से भेजे गये छात्र नेता और उसके पीछे की रणनीति को ये वामपंथी संगठन भी बेहतर जानते हैं। जिनके लिये एक ही कुएं से पानी मिलता है, वे एक-दूसरे



को बेहतर जानते हैं। प्रचार तंत्र के इस हमले के लाभ लेने के लिये वे भी सावधान थे तथा वामपंथी याने सीपीआई, सीपीएम, माले और एनजीओ के पुराने खिलाड़ी आम आदमी पार्टी के योद्धा देश के छितरे बितरे एनजीओ जो वर्षों से बेरोजगार थे, उन सभी को यहां संभावना नजर आई और वे सभी जंतर मंतर धरने में प्रवेश करा दिये गये। अन्ना हजारे का एक बार चेहरा चल चुका था, अतरू अब दूसरा सिक्का स्विटजरलैंड से सोनम वांगचुक को बुलाया गया।

खैर महत्वपूर्ण बात यह है कि इस 5-7 दिनों के खेल में जिस भाषा का प्रयोग किया गया वह भाषा गांधी-लोहिया-जेपी के आंदोलन की भाषा नहीं थी। जेन-जी के नाम से जो नौजवान युवक युवतियों की टोली आई थी, उनके नारों में कुछ एक तो सुनने और कहने लायक भी नहीं है, वैसी आजादी की कल्पना कोई सभ्य समाज तो नहीं कर सकता, हो सकता है कि उनके परिवारजन और माता-पिता भी उसे स्वीकार न कर सकें?

आजादी के आंदोलन में नारे आजादी और गांधी तक सीमित थे, लोहिया के आंदोलन में नारे कार्यक्रमों और लोहिया के थे। जेपी के आंदोलन में नारे कुछ मुददों और जेपी तक थे। पर इस तथाकथित जेन जी के आंदोलन में नारे न कार्यक्रमों के थे, न नीतियों के थे, बल्कि अधिकांश तो गंदी गालियों के थे।

दूसरे इस आंदोलन में छात्रों और धरना देने वाले समूहों और पुलिस के बीच कटुता व टकराव था। तथा आंदोलन में गांधी के अनुशासन की मान्यतायें नहीं थी। लगभग हर व्यक्ति और समूह अपनी पहचान और रील बनाने के लिये नये-नये अपशब्दों और गालियों को गढ़ रहा था। संख्या की दृष्टि से यह बहुत छोटा आंदोलन था जिसमें अंतिम चरण में यानि जून के आखिरी समय में कुछ हजार लोग थे, वे किसी सूत्र में बंधे नहीं थे बल्कि वे अपने-अपने प्रतीक चिन्हों और राजनैतिक पहचान को स्थापित करने में लगे थे। जिसमें कुछ अमेरिका से प्रायोजित छात्र समूह, कांग्रेस समर्थक, आम आदमी पाटी, सपा के छात्र, एआईएसएफ और एआईएसए के वामपंथी, चन्द्रशेखर की भीम पार्टी कुछ अनुसूचित जाति के संगठन कुछ सवर्ण मानसिकता के आरक्षण विरोधी और यूजीसी नियमों को समाप्त करने की मांग करने वाले सब शामिल थे।

इस उन्मादी भीड़ ने न केवल पत्रकारों से बल्कि आंदोलन के समर्थक पत्रकारों से भी भारी अभद्रता की। एआई से बनाये गये चित्र और जुमले भी काफी चले ताकि देश

में व छात्रों में एक उत्तेजना पैदा हो। अब दो दिनों से फिर जंतर मंतर पर एसआईआर के खिलाफ एक अभियान शुरू हुआ है, हालांकि यह अभियान आरंभ से ही विभाजित है। इसकी शुरुआत वामपंथी और आम आदमी पार्टी ने की और अब एक भिन्न तिथि पर कांग्रेस समर्थक समूह आयोजन कर रहे हैं, उसके बाद कॉकरोच समूह ने घोषणा की है कि अपनी-अपनी सुविधा और जरूरत के अनुसार राजनैतिक दल, सामाजिक समूह, विदेशी धन प्राप्त एनजीओ, तथाकथित सेलीब्रेटी हीरो-हीराइन इनमें शामिल होकर मीडिया में छप रहे हैं और अपनी फिल्मी भूमिका निभा रहे हैं। परंतु जो यह नई शैली आंदोलन की विकसित हो रही है वह और उसकी भाषा न गांधीवादी है, न लोहियावादी और न ही जेपी वाली। बल्कि एक अराजक समाज और नारीवाद के नाम पर पुरुष और नारी के बीच एक विभाजक रेखा खींचने का एक विकृत प्रयोग है। इसमें कोई दो मत नहीं है कि ऐसी घटनायें हुई हैं जिसने महिलाओं के मन में कुछ डर पैदा किया है। कांग्रेस के कार्यकाल में एक निर्भया कांड, ममता बनर्जी के काल में एक आर्जीकर की घटना हुई थी और भाजपा के काल में बंगाल, बिहार, मप्र में महिलाओं के नाम पर अनेकों घटनायें हुईं हैं। अगर कोई ऐसा कानून बन सकता हो कि इन बेटियों के खिलाफ जुर्म करने वालों को तत्काल मृत्युदंड दिया जा सकता हो तो उसे बनाया जाना चाहिये। परंतु हर पुरुष अपराधी है, यह कहना उचित नहीं है? क्या कुछ महिलाओं के द्वारा अपने पतियों की हत्या के लिये सारी महिलायें अपराधी हैं? मेरी राय में ये दोनों दृष्टिकोण गलत होंगे। जो समाज में, परिवारों में और घरों में मानसिक विभाजन रेखा खीचेंगे और संशय पैदा करेंगे। परिवार की टूटती संस्था पर एक और चोट करेंगे। कुछ बेटियों ने नारा लगाया कि एक कचौड़ी दो समोसा, मर्द जात का क्या भरोसा? क्या उन्हें अपने पिता, भाई पर से विश्वास टूट चुका है? अगर ऐसा है तो यह सोच देश को नष्ट करने वाली होगी।

मीडिया और सोशल मीडिया में कुछ पुलिस के खिलाफ तथा महिला विरोधी व्यवहार के चित्र आये हैं, उनकी जांच और पुष्टि अभी होना है। पिछले जून माह में ऐसी



कुछ घटनायें रील के माध्यम से प्रचारित की गई थी, परंतु उनकी भी कोई सत्यता प्रमाणित नहीं हुई। अब यह झूठ प्रचार तथाकथित जेन जी आंदोलन के लिये मुद्दा भी नहीं बचा।

अगर किसी पुलिस अधिकारी ने किसी बेटी के साथ आपराधिक कृत्य किया है तो उसे गिरफ्तार किया जाना चाहिये परंतु यह भी आश्चर्यजनक है कि सैकड़ों महिला पुलिस तथा सैकड़ों प्रदर्शनकारियों की उपस्थिति में ऐसी घटना हो और लोग रील बनाये, परंतु उसका प्रतिकार न करें? क्या महिला पुलिस में एक भी ऐसी महिला नहीं थी? क्या आंदोलनकारियों में क्या कोई भी आंदोलनकारी नहीं था जो पुलिस अधिकारी से टकरा सकता था? जिसे उस बेटी में अपनी बेटी नजर आई हो। यह चिंता का विषय है। समूचे समाज को अब और राजनैतिक दलों को आंदोलन की नैतिकता और भाषा की सीमायें बांधना चाहिये तथा पुलिस को भी अपनी मानवीय मर्यादायें सीमांकित करनी चाहिये। भूलना नहीं है कि हम सैकड़ों साल विदेशी गुलामी में रहे हैं। क्योंकि हम जातियों में बंटे हुए थे। अब अगर पुरुष और नारी के भेद में इस प्रकार बंट जायेंगे तो क्या देश के सारे राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक मुद्दे पीछे नहीं छूट जायेंगे? तब परिवर में आपसी विश्वास नहीं होगा। तो क्या देश वास्तव में एक देश रह पायेगा?

हमें आज बहन सौफिया कुरैशी को आदर्श मानना होगा, वह धर्म, जाति से ऊपर उठकर अपने देश की सुरक्षा के लिये समर्पित और आदर्श हैं। उस भारतीय मूल की बेटी सुनीता विलियम्स को आदर्श मानना होगा, जो आठ माह तक नासा अमेरिकी अंतरिक्ष में एक पुरुष सहकर्मी के साथ रही और दोनों ने अपने राष्ट्रीय लक्ष्य के लिये अपने जीवन को दांव पर लगाया और नैतिक मूल्यों की सीमा रेखा को नहीं तोड़ा। हालांकि यह अमेरिकी समाज का प्रशंसनीय पक्ष है। ऐसे ही उदाहरणों से राष्ट्रीय एकता और देश मजबूत होता है। अगर हर नारी यह मानने लगे कि हर पुरुष अपराधी है तो इसका एक अर्थ यह भी है कि नारी को अपनी शक्ति पर भरोसा नहीं है। नारी को अपना आत्मविश्वास तथा साहस, बचाना होगा। नर-नारी की समानता, एक आदर्श लक्ष्य है, जिसमें कोई पक्ष न कमजोर होता है, न पूर्णतरू बुरा। अगर द्रोपती के चीरहरण के लिये, एक पुरुष दुर्योधन अपराधीा तो उसके सम्मान की रक्षा करने वाला एक और पुरुष कृष्ण भी तो था।

मतांतरित मुस्लिमों को नहीं मिलेगा आरक्षण का लाभ



प्रमोद भार्गव

सर्वोच्च न्यायालय ने अपने फैसले में साफ कर दिया कि यदि अनुसूचित जाति और अन्य पिछड़ा वर्ग का कोई व्यक्ति मतांतरण कर आरक्षण का लाभ लेता है तो वह संविधान सम्मत नहीं है। अतएव आरक्षण का हकदार नहीं होगा। हालांकि यही फैसला मद्रास उच्च न्यायालय ने तमिलनाडू सरकार के उस अहम आदेश को रदद् करके दिया था, जिसके तहत हिंदू धर्म के पिछड़े, अति पिछड़े या अनुसूचित जाति वर्ग के लोग इस्लाम अपनाने के बाद भी पिछड़े वर्ग मुस्लिम का जाति प्रमाण पत्र ले सकते थे। सरकारी नौकरी और शिक्षा में आरक्षण पा लेने की इस सुविधा को अब शीर्ष न्यायालय ने दो टूक शब्दों में असंवैधानिक ठहरा दिया है। अदालत ने कहा है कि मतांतरण के बाद हिंदू सामाजिक व्यवस्था से किसी गैर-हिंदू सामाजिक व्यवस्था में मतांतरण करने वाला व्यक्ति अपने पुराने सामाजिक पिछड़ेपन के आधार पर संविधान के अनुच्छेद-16 (4) के तहत आरक्षण पाने का दावा नहीं कर सकता। अदालत ने साफ किया कि इस्लाम स्वीकार कर लेने मात्र से कोई व्यक्ति राज्य के अधिसूचित मुस्लिम पिछड़ा वर्ग समुदायों में किसी एक का भी सदस्य नहीं बन सकता है। मतांतरण से पहले की जातिगत या संप्रदायगत पहचान को अपने आप किसी दूसरे धर्म के पिछड़ा वर्ग समुदाय में स्थांतरित नहीं किया जा सकता है। इसके आरक्षण के लाभ के अधिकारी केवल हिंदू, सिख और बौद्ध हैं। यह ऐतिहासिक फैसला न्यायामूर्ति प्रशांत कुमार मिश्रा और चंद्रशेखर की पीठ ने सुनाया है। उच्च न्यायालय मद्रास की पीठ ने तमिलनाडू सरकार के उस अहम आदेश को रदद् कर दिया था, जिसके तहत हिंदू धर्म के पिछड़े, अति पिछड़े या अनुसूचित जाति वर्ग के

लोग इस्लाम अपनाने के बाद भी पिछड़े वर्ग मुस्लिम का जाति प्रमाण पत्र ले सकते थे। सरकारी नौकरी और शिक्षा में आरक्षण पा लेने की इस सुविधा को न्यायालय ने दो टूक शब्दों में असंवैधानिक माना था। अदालत ने कहा था कि धर्म बदलने वाला व्यक्ति पिछड़ा वर्ग मुस्लिम का दर्जा मांगने का अधिकार नहीं रखता है। क्योंकि मुस्लिम समाज में भी अलग-अलग समुदाय और वर्ग होते हैं, परंतु उनकी पहचान जन्म से तय होती है न कि धर्म परिवर्तन से? अदालत ने यह भी कहा था कि इस्लामिक उपदेशक

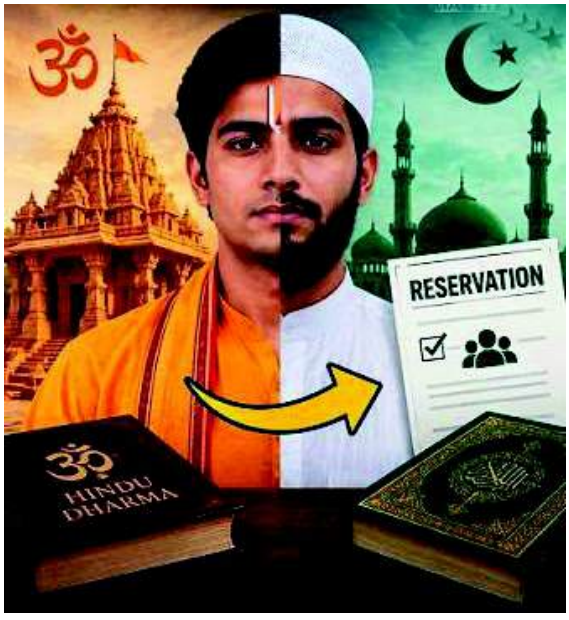

और ईसाई मिशनरियां सदियों से यह प्रचार करती आई हैं कि उनके धर्मों में सामाजिक समानता है, जबकि हिंदू धर्म में जाति व्यवस्था एक बुनियादी विसंगति है। अतएव धर्म परिवर्तन के लिए ऐसा रुख अपनाने के बाद यह कहना बेईमानी है कि इस्लाम में भी ऊंच-नीच या वर्गभेद है। हमारी राय में कुछ मुस्लिम समुदायों को पिछड़ा और कुछ को अगड़ा मानना कुरान की शिक्षाओं के खिलाफ है। दरअसल इस्लाम एक ऐसा समाज बनाना चाहता है, जिसमें सब का दर्जा एक समान रहे। यह फैसला न्यायामूर्ति जीआर स्वामीनाथन और पीबी बालाजी की पीठ ने दिया था।

इस मामले में सुनवाई के दौरान याचिकाकर्ताओं ने तमिलनाडु सरकार के तीन मार्च 2024 के आदेश को आधार बनाया था। जिसमें आरक्षित श्रेणियों से धर्मांतरित लोगों को तमिलनाडु में अधिसूचित सात पिछडे वर्ग के मुस्लिम समूहों में से एक से संबंधित होने का सामुदायिक प्रमाण-पत्र जारी किया जा सकता था। सरकार ने अपने आदेश में यह प्रविधान किया था कि अनुसूचित जाति, अन्य पिछड़ा वर्ग, अत्यंत पिछड़ा वर्ग या डी-नोटिफाइड समुदायों से आने वाले व्यक्ति यदि इस्लाम धर्म अपनाते हैं तो उन्हें पिछड़ा वर्ग मुस्लिम की क्षेणी में आरक्षण का लाभ दिया जा सकता है। इस सिलसिले में सरकार का तर्क था कि धर्म परिवर्तन करने वाले लोगों के अधिकार सुरक्षित रहेंगे और सामाजिक संतुलन बना रहेगा। किंतु अदालत ने कहा कि आरक्षण का आधार धर्म नहीं बल्कि, सामाजिक और शैक्षिक पिछड़ापन है।

संविधान के तीसरे अनुच्छेद, अनुसूचित जाति आदेश 1950 जिसे प्रेसिडेन्शियल आर्डर के नाम से भी जाना जाता है, के अनुसार केवल हिंदू धर्म का पालन करने वालों के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति को अनुसूचित जाति की श्रेणी में नहीं माना जाएगा। इसी तारतम्य में पिछले पचास सालों से दलित ईसाई और दलित मुसलमान संघर्षरत रहते हुए हिंदू अनुसूचित जातियों को दिए जाने वाले अधिकारों की मांग करते चले आ रहे हैं। वर्तमान में मुसलमान, सिख, पारसी, ईसाई और बौद्ध ही अल्पसंख्यक दायरे में आते हैं। जबकि जैन, बहाई और कुछ दूसरे धर्म-समुदाय भी अल्पसंख्यक दर्जा हासिल करना चाहते हैं। लेकिन जैन समुदाय केन्द्र द्वारा अधिसूचित सूची में नहीं है। इसमें भाशाई अल्पसंख्यकों को अधिसूचित किया गया है, धार्मिक अल्पसंख्यकों को नहीं। सुप्रीम कोर्ट के एक फैसले के मुताबिक जैन समुदाय को भी अल्पसंख्यक माना गया है। परंतु इन्हें अधिसूचित करने का अधिकार राज्यों को है, केंद्र को नहीं। इन्हीं वजहों से आतंकवाद के चलते अपनी ही पुश्तैनी जमीन से बेदखल कश्मीरी पंडित अल्पसंख्यक के दायरे में नहीं आ पा रहे हैं। मध्यप्रदेश में दिग्विजय सिंह की कांग्रेस सरकार के दौरान जैन धर्मावलंबियों को भी अल्पसंख्यक दर्जा दिया था, लेकिन अल्पसंख्यकों को दी जाने वाली सुविधाओं से ये आज भी वंचित हैं।

संविधान के अनुच्छेद-342 में धर्म परिवर्तन के संबंध में अनुच्छेद-341 जैसे प्रावधान में लोच है। 341 में स्पष्ट है कि अनुसूचित जाति (एससी) के लोग धर्म परिवर्तन करेंगे तो उनका आरक्षण समाप्त हो जाएगा। इस कारण यह वर्ग धर्मांतरण से बचा हुआ है। जबकि 342 के अंतर्गत संविधान निर्माताओं ने जनजातियों के आदि मत और पुरखों की पारंपरिक सांस्कृतिक आस्था को बनाए रखने के लिए व्यवस्था की थी कि अनुसूचित जनजातियों को राज्यवार अधिसूचित किया जाएगा। यह आदेश राष्ट्रपति द्वारा राज्य की अनुशंसा पर दिया जाता है। इस आदेश के लागू होने पर उल्लेखित अनुसूचित जनजातियों के लिए संविधान सम्मत आरक्षण के अधिकार प्राप्त होते हैं। इस आदेश के लागू होने के उपरांत भी इसमें संशोधन का अधिकार संसद को प्राप्त है। इसी परिप्रेक्ष्य में 1956 में एक संशोधन विधेयक द्वारा अनुसूचित जनजातियों में धर्मांतरण पर प्रतिबंध के लिए प्रावधान किया गया था कि यदि इस जाति का कोई व्यक्ति ईसाई या मुस्लिम धर्म



स्वीकारता है तो उसे आरक्षण का लाभ नहीं मिलेगा। किंतु यह विधेयक पारित नहीं हो पाया है। अनुच्छेद 341 के अनुसार अनुसूचित जातियों के वही लोग आरक्षण के दायरे में हैं, जो भारतीय धर्म हिन्दू, बौद्ध और सिख अपनाने वाले हैं। गोया, अनुच्छेद-342 में 341 जैसे प्रावधान हो जाते हैं, तो अनुसूचित जनजातियों में धर्मांतरण की समस्या पर स्वाभाविक रूप से अंकुश लग जाएगा।

राज्यसभा में भाजपा सांसद जीवीएल नरसिम्हा राव द्वारा पुछे गए एक सवाल के जबाव में पूर्व विधि मंत्री रविशंकर प्रसाद ने कहा था कि 'अनुसूचित जाति एवं जनजाति के जिन लोगों ने इस्लाम या ईसाई धर्म अपना लिया है, वे आरक्षण के लाभ का दावा नहीं कर सकते हैं। यही नहीं ये लोग सरकारी नौकरियों के साथ-साथ संसद और विधानसभा के लिए आरक्षित सीटों पर भी चुनाव लड़ने के योग्य नहीं माने जाएंगे। केवल हिन्दू, सिख और बौद्ध मत को मानने वाले लोग ही अनुसूचित जाति के लिए आरक्षित सीट से चुनाव लड़ने की पात्रता रखेंगे। इन्हीं लोगों को सरकारी नौकरियों की पात्रता रहेगी। उन्होंने आगे यह भी स्पष्ट किया था कि इस्लाम और ईसाई धर्म अपना चुके अनुसूचित जाति एवं जनजाति के सदस्यों को संसद या विधानसभा चुनाव लड़ने से रोकने के लिए जन-प्रतिनिधित्व अधिनियम में भी संशोधन की कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि हिंदुत्व को मानने वाले और इस्लाम या ईसाई धर्म अपना चुके लोगों के बीच अधिनियम में पहले से ही स्पष्ट विभाजन रेखांकित है। इस बयान से साफ हुआ था कि इस्लाम और ईसाई धर्म अपनाने वाले दलित और बृहद हिंदू धर्म के तहत आने वाले दलितों के बीच अंतर साफ है। यदि कालांतर में कार्यपालिका और विधायिका में बिना किसी बाधा के इस बयान पर अमल की प्रक्रिया शुरू हो जाती है तो हिंदुओं में धर्म परिवर्तन थमने का सिलसिला शुरू हो जाता और इससे राष्ट्रवाद को मजबूती मिलती। क्योंकि ज्यादातर ईसाई व इस्लामिक संस्थाओं को शिक्षा और स्वास्थ्य के बहाने हिंदुत्व और भारतीय राष्ट्रवाद की जड़ों में मट्ठा घोलने के लिए विदेशी धन मिलता है।

साफ है, अब तक धर्म परिवर्तन कर अनुसूचित जातियों के अधिकार को छीनकर हकमारी कर रहे लोगों को वास्तव में आरक्षण के लाभ की पात्रता नहीं है। ऐसे जाति और धर्म बदलने के छद्म उपाय आरक्षण के मूल उद्देष्य के विरूद्ध होने के साथ संविधान के साथ धोखाधड़ी हैं। ये उपाय आरक्षण नीति के मौलिक समाजिक लक्ष्यों को कमजोर करते हैं। अतएव ऐसे उपाय हाशिए पर पड़े समुदायों के उत्थान के उद्देष्य के तहत आरक्षण नीतियों की मूल भावना के विपरीत और उनके हक की चोरी करने वाले हैं।



गर्म होते महासागर, बदलती जलवायु : 2027 में अल नीनो और पृथ्वी का भविष्य

डॉ. विजय गर्ग

पृथ्वी की जलवायु में तेजी से बदलाव हो रहे हैं और इन परिवर्तनों के केंद्र में महासागर हैं। समुद्र के बढ़ते तापमान, पिघलते हिमनद, वर्षा के बदलते स्वरूप और चरम मौसमी घटनाएँ वायुमंडल, महासागरों तथा मानव समाज के बीच संबंधों को नया रूप दे रही हैं। वर्ष 2027 की ओर देखते हुए एक महत्वपूर्ण प्रश्न सामने आता है-अल नीनो की संभावित स्थिति और वैश्विक तापमान में वृद्धि मिलकर पृथ्वी की जलवायु को किस प्रकार प्रभावित कर सकती हैं? यद्यपि वर्ष 2027 की जलवायु परिस्थितियों का सटीक पूर्वानुमान अभी निश्चित रूप से नहीं किया जा सकता, फिर भी अल नीनो और महासागरों के लगातार गर्म होने की प्रक्रिया को समझकर हम संभावित पर्यावरणीय चुनौतियों के लिए बेहतर तैयारी कर सकते हैं।

महासागरः पृथ्वी की जलवायु के नियामक

महासागर पृथ्वी के तापमान को नियंत्रित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वे ग्रीनहाउस गैसों के कारण वातावरण में फँसी अतिरिक्त गर्मी का अधिकांश हिस्सा अवशोषित करते हैं और ऊर्जा की विशाल मात्रा को अपने भीतर संचित रखते हैं। समुद्री धाराएँ दुनिया के विभिन्न क्षेत्रों में गर्मी का परिवहन करती हैं, वर्षा को प्रभावित करती हैं तथा तूफानों के विकास और गति को निर्धारित करने में योगदान देती हैं। लेकिन इस प्राकृतिक व्यवस्था की भी सीमाएँ हैं। मानवीय गतिविधियों से कार्बन डाइऑक्साइड और अन्य ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन बढ़ने के कारण महासागर

लगातार गर्म हो रहे हैं। इससे समुद्री पारिस्थितिकी तंत्र प्रभावित होता है, प्रवाल भित्तियों के विरंजन का खतरा बढ़ता है और पानी के तापीय विस्तार के कारण समुद्र का स्तर ऊपर उठता है। गर्म महासागर केवल समुद्री जल के तापमान में वृद्धि का संकेत नहीं हैं। वे वायुमंडलीय परिसंचरण, नमी की उपलब्धता, मानसून के व्यवहार और मौसम प्रणालियों के विकास को भी प्रभावित कर सकते हैं। महासागर और वायुमंडल एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं, इसलिए एक में होने वाला परिवर्तन दूसरे को भी प्रभावित करता है।

2027 में पृथ्वी की जलवायु को कैसे प्रभावित कर सकता है अल नीनो ?

वर्ष 2027 की जलवायु पर अल नीनो का प्रभाव इस बात पर निर्भर करेगा कि यह घटना विकसित होती है या नहीं, कब शुरू होती है, कितनी शक्तिशाली होती है और मानवजनित वैश्विक तापवृद्धि के साथ इसकी क्या अंतःक्रिया होती है। यदि एक महत्वपूर्ण अल नीनो विकसित होता है, तो यह 2027 में वैश्विक औसत तापमान को और बढ़ाने में योगदान दे सकता है। अल नीनो महासागर और वायुमंडल के बीच ऊर्जा के वितरण को प्रभावित करता है और समुद्र में संचित गर्मी का कुछ हिस्सा वायुमंडल में पहुँच सकता है। दीर्घकालिक वैश्विक तापवृद्धि के साथ मिलकर यह प्रभाव अत्यधिक गर्म परिस्थितियों की आशंका बढ़ा सकता है। हालाँकि, यह मान लेना उचित नहीं होगा कि 2027 में निश्चित रूप से शक्तिशाली अल नीनो आएगा। वैज्ञानिक समुद्री तापमान, व्यापारिक पवनों, वायुमंडलीय दबाव और अन्य संकेतकों का अध्ययन करके इसकी संभावना का आकलन करते हैं।

वैश्विक तापमान में वृद्धि

अल नीनो का एक प्रमुख संभावित प्रभाव वैश्विक औसत तापमान में वृद्धि है। हाल के वर्षों ने दिखाया है कि प्राकृतिक जलवायु परिवर्तनशीलता और दीर्घकालिक वैश्विक तापवृद्धि मिलकर असाधारण गर्म परिस्थितियाँ पैदा कर सकती हैं। यदि 2027 में अल नीनो विकसित होता है, तो पहले से गर्म हो रही पृथ्वी का तापमान और बढ़ सकता है। इससे विशेष रूप से उन क्षेत्रों में लू और अत्यधिक गर्मी का खतरा बढ़ सकता है, जहाँ पहले से तापमान बहुत अधिक रहता है। अत्यधिक गर्मी मानव स्वास्थ्य, श्रमिकों की उत्पादकता, बिजली की माँग और कृषि उत्पादन को प्रभावित कर सकती है। बुजुर्गों, बच्चों, खुले में काम करने वाले श्रमिकों और शीतलन सुविधाओं से वंचित लोगों पर इसका प्रभाव अधिक गंभीर हो सकता है। यहाँ प्राकृतिक जलवायु परिवर्तनशीलता और दीर्घकालिक तापवृद्धि के बीच अंतर समझना आवश्यक है। अल नीनो कुछ समय के लिए वैश्विक तापमान बढ़ा सकता है, लेकिन पृथ्वी के लगातार गर्म होने का मुख्य कारण मानवीय गतिविधियों से उत्पन्न ग्रीनहाउस गैसें हैं।

भारतीय मानसून और कृषि की चुनौतियाँ

भारत के लिए अल नीनो और दक्षिण-पश्चिम मानसून के बीच संबंध विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। भारतीय कृषि का एक बड़ा हिस्सा मानसूनी वर्षा पर निर्भर करता है। यही वर्षा फसलों, भूजल पुनर्भरण और ग्रामीण आजीविका को सहारा देती है। ऐतिहासिक रूप से अल नीनो की परिस्थितियों का संबंध भारत में सामान्य से कम मानसूनी वर्षा की बढ़ी हुई संभावना से रहा है। हालाँकि, यह संबंध हर वर्ष एक जैसा नहीं होता। कुछ अल नीनो वर्षों में भी अपेक्षाकृत अच्छी वर्षा हुई है। हिंद महासागर द्विध्रुव, क्षेत्रीय समुद्री तापमान, वायुमंडलीय परिसंचरण और अन्य कारक मानसून को प्रभावित कर सकते हैं। यदि 2027 में अल नीनो विकसित होता है, तो वैज्ञानिकों और नीति-निर्माताओं को मानसून पर उसके संभावित प्रभावों का सावधानीपूर्वक आकलन करना होगा। केवल अल नीनो के आधार पर सूखे की निश्चित भविष्यवाणी करना उचित नहीं है। किसानों को समय पर

अल नीनो क्या है?

अल नीनो एक प्राकृतिक जलवायु घटना है, जिसमें भूमध्यरेखीय प्रशांत महासागर के मध्य और पूर्वी भाग में समुद्र की सतह का तापमान सामान्य से अधिक हो जाता है। यह अल नीनो-दक्षिणी दोलन (ENSO) का हिस्सा है। इसके अंतर्गत ला नीना की स्थिति भी आती है, जिसमें समुद्र की सतह का तापमान सामान्य से कम हो जाता है। इनके बीच तटस्थ परिस्थितियाँ भी हो सकती हैं। सामान्य परिस्थितियों में व्यापारिक पवनें गर्म सतही जल को पश्चिमी प्रशांत महासागर की ओर धकेलती हैं, जबकि दक्षिण अमेरिका के तट के पास अपेक्षाकृत ठंडा जल ऊपर उठता है। अल नीनो के दौरान ये पवनें कमजोर पड़ जाती हैं। गर्म जल पूर्व की ओर फैलने लगता है और वायुमंडलीय परिसंचरण के स्वरूप में बदलाव आता है। इन परिवर्तनों का प्रभाव प्रशांत महासागर से दूर स्थित क्षेत्रों पर भी पड़ सकता है। कुछ क्षेत्रों में अत्यधिक वर्षा और बाढ़ की संभावना बढ़ती है, जबकि दूसरे क्षेत्रों में सूखा, गर्मी और जल संकट उत्पन्न हो सकता है। प्रभाव इस बात पर निर्भर करता है कि अल नीनो कितना शक्तिशाली है, कब विकसित होता है और अन्य जलवायु परिस्थितियाँ कैसी हैं। यह समझना आवश्यक है कि प्रत्येक चरम मौसमी घटना का कारण अल नीनो नहीं होता। यह कुछ क्षेत्रों में विशेष प्रकार की मौसमी परिस्थितियों की संभावना को बढ़ा या घटा सकता है।

मौसम संबंधी जानकारी, उपयुक्त फसल किस्मों, कुशल सिंचाई, मिट्टी में नमी के संरक्षण और विविध फसल प्रणालियों से लाभ मिल सकता है। सरकारें सूखा प्रभावित क्षेत्रों के लिए आकस्मिक योजनाएँ तैयार कर सकती हैं और किसानों तक विश्वसनीय मौसम पूर्वानुमान पहुँचा सकती हैं। पंजाब और अन्य कृषि प्रधान क्षेत्रों के लिए जल प्रबंधन विशेष महत्व रखता है। भूजल का संरक्षण, फसल विविधीकरण और सिंचाई की दक्षता बढ़ाना बदलती वर्षा परिस्थितियों के प्रति कृषि की संवेदनशीलता कम कर सकता है।



अत्यधिक वर्षा, बाढ़ और सूखा

अल नीनो वायुमंडल में गर्मी और नमी के वितरण को बदलकर दुनिया के विभिन्न हिस्सों में वर्षा के स्वरूप को प्रभावित करता है। कुछ क्षेत्रों में लंबे समय तक शुष्क परिस्थितियाँ रह सकती हैं, जबकि अन्य क्षेत्रों में असामान्य रूप से भारी वर्षा हो सकती है। सूखे के कारण जलाशयों का स्तर घट सकता है, फसलें नष्ट हो सकती हैं, जंगलों में आग का खतरा बढ़ सकता है और पेयजल की कमी हो सकती है। दूसरी ओर, अत्यधिक वर्षा से जल निकासी व्यवस्था पर दबाव पड़ता है, अचानक बाढ़ आ सकती है और सड़कें, घर तथा कृषि भूमि क्षतिग्रस्त हो सकते हैं। इन प्रभावों का स्वरूप सभी महाद्वीपों में एक जैसा नहीं होगा। स्थानीय भूगोल, मिट्टी की स्थिति, भूमि उपयोग, तूफानों के मार्ग और क्षेत्रीय मौसम प्रणालियाँ यह निर्धारित करती हैं कि किसी स्थान पर कितना नुकसान होगा। इसलिए जलवायु के लिए तैयारी केवल वैश्विक पूर्वानुमान पर निर्भर नहीं रह सकती। सरकारों को क्षेत्रीय पूर्व चेतावनी प्रणालियाँ, बाढ़ जोखिम का आकलन, सूखे की निगरानी और संवेदनशील समुदायों तक समय पर सूचना पहुँचाने की व्यवस्था मजबूत करनी चाहिए।

महासागर, प्रवाल भित्तियाँ और समुद्री जीवन

महासागर दोहरी चुनौती का सामना कर रहे हैं- दीर्घकालिक तापवृद्धि और समुद्री तापमान में प्राकृतिक उतार-चढ़ाव। जब प्रवाल भित्तियों के आसपास समुद्री जल लंबे समय तक असामान्य रूप से गर्म रहता है, तो प्रवाल विरंजन की घटना हो सकती है। गंभीर या लंबे समय तक रहने वाला विरंजन प्रवालों की मृत्यु का कारण बन सकता है। इससे उन समुद्री पारिस्थितिक तंत्रों को खतरा होता है, जो मत्स्य पालन, पर्यटन और तटीय समुदायों की आजीविका के लिए महत्वपूर्ण हैं। समुद्री ताप लहरें मछलियों के वितरण को बदल सकती हैं, खाद्य शृंखलाओं को बाधित कर सकती हैं और समुद्री जीवों के प्रजनन तथा जीवित रहने की क्षमता को प्रभावित कर सकती हैं। कुछ प्रजातियाँ ठंडे पानी की ओर जा सकती हैं, जबकि दूसरी प्रजातियों के लिए बदलती परिस्थितियों के अनुकूल होना कठिन हो सकता है। अल नीनो उष्णकटिबंधीय प्रशांत महासागर के कुछ हिस्सों में गर्मी बढ़ा सकता है, लेकिन समुद्री पारिस्थितिकी तंत्र पर इसका प्रभाव स्थान के अनुसार अलग-अलग होता है। व्यापक समस्या यह है कि जलवायु परिवर्तन प्राकृतिक घटनाओं के दौरान तापमान की मूल पृष्ठभूमि को लगातार ऊँचा कर रहा है। समुद्री आवासों की रक्षा, प्रदूषण में कमी, प्रभावी समुद्री संरक्षित क्षेत्रों का विकास और ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में कटौती समुद्री पारिस्थितिकी तंत्र की सुरक्षा के लिए आवश्यक हैं।

समुद्र का बढ़ता स्तर और तटीय समुदाय

वैश्विक तापवृद्धि के कारण समुद्र का स्तर मुख्यतः दो कारणों से बढ़ता है। पहला, गर्म होने पर समुद्री जल फैलता है। दूसरा, पिघलते हिमनदों और बर्फ की विशाल चादरों से अतिरिक्त पानी महासागरों में पहुँचता है। अल नीनो समुद्र के स्तर में होने वाली दीर्घकालिक वृद्धि का एकमात्र कारण नहीं है। फिर भी यह महासागरीय क्षेत्रों में पानी के अस्थायी वितरण को बदल सकता है और कुछ स्थानों पर समुद्र के क्षेत्रीय स्तर को प्रभावित कर सकता है। जब इन परिवर्तनों के साथ ऊँची ज्वार-भाटा की स्थिति, तूफानी लहरें और तटीय कटाव जुड़ते हैं, तो तटीय समुदायों के लिए खतरा बढ़ सकता है। निचले द्वीपों, घनी आबादी

वाले समुद्री तटों और तटीय शहरों को दीर्घकालिक योजना की आवश्यकता है। बेहतर जल निकासी, मैंग्रोव वनों की बहाली, मजबूत तटीय बुनियादी ढाँचा और सुनियोजित अनुकूलन उपाय संभावित नुकसान को कम कर सकते हैं।

बदलती जलवायु की मानवीय कीमत

जलवायु परिवर्तन केवल पर्यावरण का विषय नहीं है। यह स्वास्थ्य, समानता और आर्थिक सुरक्षा से भी जुड़ा हुआ है। अत्यधिक गर्मी से निर्जलीकरण, हीट एग्जॉशन और जानलेवा हीटस्ट्रोक हो सकता है। सूखा खाद्य असुरक्षा बढ़ा सकता



है, जबकि बाढ़ पेयजल को दूषित कर सकती है और स्वास्थ्य सेवाओं को बाधित कर सकती है। प्राकृतिक आपदाओं के कारण परिवार विस्थापित हो सकते हैं, बच्चों की शिक्षा प्रभावित हो सकती है और गरीबी बढ़ सकती है। इस संकट का सबसे अधिक बोझ अक्सर उन लोगों पर पड़ता है, जिनका ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन में योगदान कम है, लेकिन जिनके पास आपदाओं से उबरने के संसाधन भी सीमित हैं। इसलिए 2027 और उसके बाद की परिस्थितियों के लिए तैयारी में सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाओं को मजबूत करना, खुले में काम करने वाले श्रमिकों की सुरक्षा, आपातकालीन सेवाओं में सुधार और ग्रामीण तथा आर्थिक रूप से कमजोर समुदायों तक जलवायु संबंधी जानकारी पहुँचाना शामिल होना चाहिए।

क्या विज्ञान 2027 की जलवायु का पूर्वानुमान लगा सकता है?

आधुनिक जलवायु विज्ञान उपग्रहों, समुद्री बुआओं, मौसम केंद्रों, कंप्यूटर मॉडलों और ऐतिहासिक अभिलेखों की सहायता से पृथ्वी की बदलती परिस्थितियों की निगरानी करता है। मौसमी पूर्वानुमान प्रणालियाँ यह अनुमान लगा सकती हैं कि अल नीनो, ला नीना या तटस्थ ENSO परिस्थितियों में से किसकी संभावना अधिक है। जलवायु मॉडल सामान्य से अधिक तापमान और कुछ क्षेत्रों में वर्षा के बदलते स्वरूप की संभावनाओं का भी आकलन कर सकते हैं। फिर भी मौसमी पूर्वानुमानों की सीमाएँ हैं। उनकी सटीकता क्षेत्र और मौसम के अनुसार बदलती है। कई महीने पहले प्रत्येक तूफान, बाढ़ या लू की घटना का विश्वसनीय पूर्वानुमान लगाना संभव नहीं है। इसलिए वैज्ञानिकों को भविष्यवाणियाँ निश्चित दावों के बजाय संभावनाओं के रूप में प्रस्तुत करनी चाहिए। संभावित अल नीनो को आपदा की निश्चित घोषणा नहीं, बल्कि तैयारी मजबूत करने के संकेत के रूप में देखना चाहिए। 2027 के नजदीक आने पर प्रशांत महासागर की लगातार निगरानी, मौसम विज्ञान संस्थानों के नियमित पूर्वानुमान और क्षेत्रीय जलवायु आकलन विशेष रूप से महत्वपूर्ण होंगे।

दुनिया को क्या करना चाहिए?

2027 में संभावित जलवायु चुनौतियाँ दो प्रकार के प्रयासों की आवश्यकता को रेखांकित करती हैं- अनुकूलन और उत्सर्जन में कमी। अनुकूलन का अर्थ है उन जलवायु प्रभावों के लिए तैयारी करना, जिन्हें पूरी तरह टाला नहीं जा सकता। इसमें गर्मी से बचाव की योजनाएँ, सूखा सहने वाली फसलें, कुशल जल उपयोग, बाढ़-रोधी बुनियादी ढाँचा, पूर्व चेतावनी प्रणालियाँ और बेहतर आपदा प्रबंधन शामिल हैं। जलवायु परिवर्तन को कम करना अर्थात उसके मूल कारणों पर कार्रवाई करना। जीवाश्म ईंधनों पर निर्भरता घटाना, स्वच्छ ऊर्जा का विस्तार करना, ऊर्जा दक्षता बढ़ाना, वनों की रक्षा करना और मीथेन उत्सर्जन कम करना भविष्य की तापवृद्धि को सीमित करने में मदद कर सकता है। व्यक्ति भी जिम्मेदार ऊर्जा उपयोग, जल संरक्षण, पेड़ों की रक्षा और कचरे में कमी के माध्यम से योगदान दे सकते हैं। हालाँकि, व्यक्तिगत प्रयासों को प्रभावी सरकारी नीतियों, वैज्ञानिक अनुसंधान और अंतरराष्ट्रीय सहयोग का समर्थन मिलना आवश्यक है। विद्यालयों और शैक्षणिक संस्थानों की भी महत्वपूर्ण भूमिका है। जलवायु शिक्षा युवाओं को प्राकृतिक जलवायु परिवर्तनशीलता और मानवजनित वैश्विक तापवृद्धि के बीच अंतर समझने, वैज्ञानिक जानकारी का मूल्यांकन करने और जिम्मेदार निर्णय लेने में सहायता कर सकती है।

वैश्विक ऊर्जा संकट? पेट्रोल-डीजल निर्यात शुल्क में बड़ा उलटफेर



किशन भावनानी

वैश्विक स्तर पर दुनियाँ के ऊर्जा बाजार में इन दिनों युद्ध, तेल की आपूर्ति, अंतरराष्ट्रीय व्यापार और आर्थिक सुरक्षा का ऐसा त्रिकोण बन रहा है, जिसका असर भारत जैसे बड़े तेल आयातक देश पर भी पड़ सकता है। एक ओर पश्चिम एशिया में बढ़ता सैन्य तनाव, दूसरी ओर सऊदी अरब के हवाई अड्डों और ऊर्जा प्रतिष्ठानों पर हमलों की खबरें और तीसरी ओर भारत सरकार का पेट्रोल एवं डीजल निर्यात शुल्क में बदलाव, ये घटनाएं बताती हैं कि आज तेल केवल व्यापार की वस्तु नहीं,बल्कि राष्ट्रीय सुरक्षा और आर्थिक स्थिरता का महत्वपूर्ण आधार है। केंद्र सरकार ने 15 अक्टूबर की देर रात जारी आदेश के माध्यम से 16 अक्टूबर 2026 से पेट्रोल के निर्यात पर शुल्क 0.50 रूपए से बढ़ाकर 2.50 रूपए प्रति लीटर कर दिया, जबकि डीजल पर लगने वाला शुल्क 16 रूपए से घटाकर 8.50 रूपए प्रति लीटर कर दिया गया। यानि पेट्रोल पर शुल्क बढ़ाकर पांच गुना हुआ, लेकिन डीजल पर 7.50 रूपए प्रति लीटर की कटौती हुई। सवाल है कि इस विरोधाभासी फैसले के पीछे क्या अर्थशास्त्र है, विंडफॉल टैक्स आखिर क्या है और क्या इससे आम आदमी को राहत मिलेगी? इन सब बातों को हम नीचे सटीकता से पैराग्राफ वॉइस समझने की कोशिश करेंगे।

क्या दुनिया के तेल बाजार पर मंडरा रहा है संकट? इसको समझने की करें तो, पश्चिम एशिया में जारी संघर्ष ने ऊर्जा आपूर्ति को लेकर नई चिंताएं पैदा कर दी हैं।

यमन के हूती संगठन और सऊदी नेतृत्व वाले गठबंधन के बीच तनाव बढ़ने के साथ मिसाइलों और ड्रोन हमलों की खबरें सामने आई हैं। 15 अक्टूबर की रिपोर्टों के अनुसार, यमन के अदन स्थित अल-मआशिक राष्ट्रपति परिसर के आसपास भी हमला हुआ। यहां एक महत्वपूर्ण तथ्य स्पष्ट करना जरूरी है कि राष्ट्रपति भवन पर हमले की रिपोर्ट यमन के राष्ट्रपति परिसर से संबंधित है, न कि सऊदी अरब के राष्ट्रपति भवन से। वहीं, सऊदी अरब में हवाई अड्डों और सामरिक प्रतिष्ठानों पर हमलों तथा तेल सुविधाओं को लेकर खतरे की खबरों ने सुरक्षा चिंताएं बढ़ाई हैं। इस संकट का आर्थिक महत्व इसलिए अधिक है, क्योंकि सऊदी अरब वैश्विक तेल आपूर्ति का प्रमुख केंद्र है। यदि तेल उत्पादन, रिफाइनरी संचालन, बंदरगाहों या समुद्री परिवहन में लंबे समय तक बाधा आती है, तो अंतरराष्ट्रीय बाजार में कच्चे तेल की कीमतें बढ़ सकती हैं। विशेष रूप से होर्मुज जलडमरूमध्य में जहाजों की आवाजाही प्रभावित होने पर संकट और गंभीर हो सकता है। हालांकि, हमलों की खबरों का अर्थ यह नहीं है कि सऊदी अरब का पूरा तेल उत्पादन बंद हो गया है या दुनिया में तेल की तत्काल भारी कमी निश्चित है। वास्तविक असर हमलों की अवधि, क्षतिग्रस्त प्रतिष्ठानों, वैकल्पिक आपूर्ति और तेल भंडारों पर निर्भर करेगा।भारत के लिए यह चुनौती इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि देश अपनी कच्चे तेल की जरूरतों का बड़ा हिस्सा आयात करता है। तेल महंगा होने पर आयात बिल, रुपये की विनिमय दर, परिवहन लागत और महंगाई पर दबाव बढ़ सकता है।इसी पृष्ठभूमि में निर्यात शुल्क की नीति को सटीकता से समझना आवश्यक है।

विंडफॉल टैक्स क्या है? आसान भाषा में समझने की करें तो, विंडफॉल टैक्स का सामान्य अर्थ है असाधारण परिस्थितियों में कंपनियों को होनेवाले अप्रत्याशित अतिरिक्त मुनाफेपर लगाया जाने वाला कर। उदाहरण के लिए, युद्ध या आपूर्ति संकट के कारण अंतरराष्ट्रीय बाजार में पेट्रोलियम उत्पादों की कीमतें तेजी से बढ़ जाएं और किसी कंपनी को सामान्य परिस्थितियों की तुलना में बहुत अधिक लाभ मिलने लगे, तो सरकार उस अतिरिक्त लाभ के एक हिस्से पर कर लगाने का निर्णय ले सकती है।लेकिन भारत के मौजूदा मामले में तकनीकी अंतर समझना जरूरी है। पेट्रोल और डीजल के निर्यात पर लागू शुल्क को समाचारों में विंडफॉल टैक्स कहा जा रहा है, जबकि इसे विशेष अतिरिक्त उत्पाद शुल्क तथा अन्य लागू उपकरों के माध्यम से निर्धारित किया जाता है। यह जरूरी नहीं कि प्रत्येक कंपनी के वास्तविक अतिरिक्त मुनाफे की गणना करके ही प्रति लीटर शुल्क लगाया जाए। वर्तमान व्यवस्था में निर्यात पर निर्धारित दर लागू होती है। सरल उदाहरण से समझिए। यदि कोई रिफाइनरी घरेलू बाजार में बेचने के बजाय विदेश में पेट्रोल बेचकर अधिक कमाई कर सकती है, तो सरकार निर्यात पर शुल्क बढ़ाकर उस विकल्प को कुछ महंगा बना सकती है। इससे घरेलू बिक्री और निर्यात के बीच आर्थिक संतुलनप्रभावित हो सकता है। हालांकि, केवल शुल्क बढ़ाने से कंपनियां अनिवार्य रूप से सारा ईंधन घरेलू बाजार में बेचेंगी, इसकी गारंटी नहीं होती; इसके लिए मांग, उत्पादन क्षमता, निर्यात अनुबंध और अन्य नियम भी महत्वपूर्ण हैं।

16 अक्टूबर से लागू नई दरों को समझने की करें तो पेट्रोल पर पांच गुना बढ़ोतरी, डीजल पर कटौती, केंद्र सरकार के नए आदेश के अनुसार पेट्रोल और डीजल के निर्यात शुल्क में अलग-अलग बदलाव किए गए हैं। विवरण पुरानी दर नई दरपेट्रोल निर्यात शुल्क 0.50 रूपए /लीटर 2.50/रूपए लीटर डीजल निर्यात शुल्क 16/रूपए लीटर 8.50 रूपए / लीटर डीजल शुल्क में कमी- 7.50 रूपए /लीटर इसका अर्थ है कि पेट्रोल पर शुल्क में 2 रूपये प्रति लीटर की वृद्धि हुई है, जबकि डीजल पर 7.50 रूपये प्रति लीटर की कटौती की गई है। इसलिए इसे केवल कर बढ़ाने का फैसला कहना सही नहीं होगा, यह दोनों ईंधनों के लिए अलग-अलग दिशा में

16 अक्टूबर से लागू नई दरों को समझने की करें तो पेट्रोल पर पांच गुना बढ़ोतरी, डीजल पर कटौती, केंद्र सरकार के नए आदेश के अनुसार पेट्रोल और डीजल के निर्यात शुल्क में अलग-अलग बदलाव किए गए हैं। विवरण पुरानी दर नई दरपेट्रोल निर्यात शुल्क 0.50 रूपए /लीटर 2.50/रूपए लीटर डीजल निर्यात शुल्क 16/रूपए लीटर 8.50 रूपए / लीटर डीजल शुल्क में कमी- 7.50 रूपए /लीटर इसका अर्थ है कि पेट्रोल पर शुल्क में 2 रूपये प्रति लीटर की वृद्धि हुई है, जबकि डीजल पर 7.50 रूपये प्रति लीटर की कटौती की गई है। इसलिए इसे केवल कर बढ़ाने का फैसला कहना सही नहीं होगा, यह दोनों ईंधनों के लिए अलग-अलग दिशा में किया गया नीतिगत बदलाव है।पेट्रोल का शुल्क बढ़ने से विदेश में पेट्रोल बेचने की लागत बढ़ सकती है। दूसरी ओर, डीजल पर शुल्क घटने से उसके निर्यात पर पड़ने वाला कर-भार कम होगा।



किया गया नीतिगत बदलाव है।पेट्रोल का शुल्क बढ़ने से विदेश में पेट्रोल बेचने की लागत बढ़ सकती है। दूसरी ओर, डीजल पर शुल्क घटने से उसके निर्यात पर पड़ने वाला कर-भार कम होगा। सरकार के आदेश में दोनों दरों में बदलाव किया गया है, लेकिन केवल इस आधार पर यह निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए कि सरकार ने पेट्रोल की घरेलू कमी की पुष्टि कर दी है या डीजल की आपूर्ति सटीकता से पूरी तरह सुरक्षित हो गई है।

सरकार विंडफॉल टैक्स क्यों लगाती है? तीन प्रमुख उद्देश्य को समझने की करें तो पहला उद्देश्य है घरेलू ऊर्जा सुरक्षा। यदि अंतरराष्ट्रीय बाजार में कीमतें बहुत आकर्षक हों, तो कंपनियों के लिए निर्यात करना अधिक लाभकारी हो सकता है। निर्यात शुल्क इस लाभ को प्रभावित करके घरेलू आपूर्ति बनाए रखने के सरकारी प्रयास का हिस्सा बन सकता है। हालांकि, आपूर्ति पर इसका वास्तविक प्रभाव बाजार की परिस्थितियों पर निर्भर करता है।दूसरा उद्देश्य है सरकारी राजस्व और सार्वजनिक खर्च। अतिरिक्त शुल्क से सरकार को राजस्व मिल सकता है, जिसे व्यापक बजटीय संसाधनों के हिस्से के रूप में सार्वजनिक सेवाओं और कल्याणकारी योजनाओं के वित्तपोषण में इस्तेमाल किया जा सकता है। लेकिन यह कहना सही नहीं होगा कि इस शुल्क से प्राप्त प्रत्येक रुपया सीधे पेट्रोल-डीजल की सब्सिडी में ही खर्च किया जाता है। तीसरा उद्देश्य है असाधारण लाभ और सार्वजनिक हित के बीच संतुलन। जब संकट के कारण किसी क्षेत्र की कंपनियों को असामान्य लाभ मिलता है, तो सरकार कर नीति के जरिए उसका कुछ हिस्सा सार्वजनिक राजस्व में लाने की कोशिश कर सकती है। इससे आर्थिक असमानता घटाने में अप्रत्यक्ष सहायता मिल सकती है, लेकिन केवल विंडफॉल टैक्स से आर्थिक असमानता समाप्त नहीं होती।

15 दिन में समीक्षा: भारत की नीति कैसे काम करती है? हम इसको समझने की करें तो भारत ने जुलाई 2022 में अंतरराष्ट्रीय ऊर्जा कीमतों में तेजी के बीच पेट्रोलियम उत्पादों के निर्यात पर ऐसे शुल्कों का इस्तेमाल शुरू किया था। बाद में दरों में बदलाव हुए और 2024 में ये शुल्क हटाए गए। 2026 में ऊर्जा बाजार में नए उछाल के बीच निर्यात शुल्क फिर लागू किए गए। सरकारी पेट्रोलियम योजना एवं विश्लेषण प्रकोष्ठ की दर-सारणी में विभिन्न तारीखों पर शुल्कों में हुए बदलाव दर्ज हैं। इन दरों की लगभग प्रत्येक पखवाड़े समीक्षा की जाती है। ज़ो अंतरराष्ट्रीय कच्चे तेल और पेट्रोलियम उत्पादों की कीमतों में बदलाव, निर्यात की आर्थिक स्थिति और घरेलू ऊर्जा जरूरतों को ध्यान में रखकर शुल्क घटाए या बढ़ाए जा सकते हैं। तेल पर्याप्त उपलब्ध होने पर शुल्क कम या शून्य किया जा सकता है, लेकिन ऐसा कोई स्वतः लागू नियम नहीं है कि घरेलू आपूर्ति बढ़ते ही

शुल्क अनिवार्य रूप से शून्य हो जाएगा। यह सरकार के निर्णय और लागू अधिसूचना पर निर्भर करता है।दुनिया के अन्य देशों ने भी ऊर्जा संकट के समय असाधारण लाभ पर कर लगाने के विभिन्न तरीके अपनाए हैं। उदाहरण के लिए, ब्रिटेन ने 2022 में तेल और गैस कंपनियों के असाधारण लाभ पर ऊर्जा लाभ लेवी लागू की थी। यूरोपीय संघ ने भी ऊर्जा क्षेत्र के कुछ अतिरिक्त लाभों पर अस्थायी योगदान की व्यवस्था की थी। इन



नीतियों की दरें, कानूनी आधार और लागू क्षेत्र सटीकता से भारत की व्यवस्था से अलग हैं।

क्या आम आदमी की जेब पर पड़ेगा असर? इसको समझने की करें तो सरकार के इस बदलाव का सीधा दायरा निर्यात शुल्क है, घरेलू पेट्रोल पंपों पर बेचे जाने वाले पेट्रोल और डीजल की कीमतों में स्वतः बदलाव नहीं। उपलब्ध रिपोर्टों के अनुसार, घरेलू खपत के लिए लागू मौजूदा शुल्क दरों में इस आदेश से परिवर्तन नहीं किया गया है। इसलिए 16 अक्टूबर को निर्यात शुल्क बढ़ने का मतलब यह नहीं है कि आम नागरिक को पेट्रोल खरीदते समय तत्काल 2.50 रूपए अतिरिक्त देना पड़ेगा। इसी तरह डीजल निर्यात शुल्क घटने का अर्थ यह भी नहीं है कि पेट्रोल पंप पर डीजल 7.50 रूपए सस्ता हो जाएगा। फिर भी अप्रत्यक्ष प्रभाव संभव हैं। यदि वैश्विक तेल कीमतें लंबे समय तक ऊंची रहती हैं, तो परिवहन, माल ढुलाई, विनिर्माण और खाद्य वस्तुओं की लागत पर दबाव पड़ सकता है। इसके विपरीत, यदि घरेलू आपूर्ति स्थिर रहती है और अंतरराष्ट्रीय कीमतें घटती हैं, तो अर्थव्यवस्था को राहत मिल सकती है। अंतिम असर कर नीति के साथ-साथ कच्चे तेल की कीमत, रुपये की स्थिति, रिफाइनरी लागत और घरेलू मूल्य निर्धारण पर निर्भर करेगा।

सऊदी अरब में उड़ानों पर रोकः युद्ध का असर हवाई यातायात तक को समझने की करें तो क्षेत्रीय सुरक्षा संकट का प्रभाव हवाई यातायात पर भी दिखाई दे रहा है।16 अक्टूबर की रिपोर्ट के अनुसार, एयर इंडिया ने रियाद,दम्माम और जेद्दा से आने-जाने वाली उड़ानों का निलंबन 20 अक्टूबर 2026 तक बढ़ाया है। इंडिगो और अकासा एयर ने भी कुछ सऊदी मार्गों पर 17 अक्टूबर तक उड़ानों के निलंबन या रद्दीकरण की घोषणा की है। अन्य अंतरराष्ट्रीय विमानन कंपनियों ने भी अपनी उड़ानों के कार्यक्रम बदले हैं। यह अंतर समझना महत्वपूर्ण है कि ये संबंधित एयरलाइनों द्वारा सुरक्षा परिस्थितियों को देखते हुए लिए गए परिचालन निर्णय हैं, इन्हें भारत सरकार द्वारा सभी अंतरराष्ट्रीय उड़ानों पर लगाई गई एक समान रोक कहना सही नहीं होगा।यात्रियों को हवाई अड्डे के लिए निकलने से पहले अपनी एयरलाइन से उड़ान की स्थिति की सटीकता से पुष्टि करनी चाहिए।

तेल की हर बूंद अब अर्थव्यवस्था और सुरक्षा से जुड़ी है, आज की वैश्विक परिस्थितियां भारत को ऊर्जा सुरक्षा, व्यापारिक लाभ और आम नागरिक के हितों के बीच संतुलन बनाने की चुनौती दे रही हैं। पेट्रोल निर्यात शुल्क में पांच गुना वृद्धि और डीजल शुल्क में 7.50 रूपए प्रति लीटर की कटौती इसी बदलते आर्थिक परिदृश्य का हिस्सा है। विंडफॉल टैक्स या निर्यात शुल्क अपने आप में न तो तेल संकट का पूर्ण समाधान है और न ही महंगाई से सुरक्षा की गारंटी। इसका महत्व इस बात में है कि सरकार बदलती परिस्थितियों में निर्यात और घरेलू जरूरतों के बीच संतुलन बनाने के लिए एक नीतिगत साधन इस्तेमाल कर रही है। यदि पश्चिम एशिया में संघर्ष लंबा खिंचता है, समुद्री मार्ग बाधित होते हैं या ऊर्जा प्रतिष्ठानों को गंभीर नुकसान पहुंचता है,तो भारत के सामने आयात लागत और महंगाई का दबाव बढ़ सकता है। ऐसे में पर्याप्त रणनीतिक भंडार, विविध आयात स्रोत, सुरक्षित परिवहन मार्ग और पारदर्शी कर नीति पहले से कहीं अधिक महत्वपूर्ण होंगे। अंततः ऊर्जा सुरक्षा का असली पैमाना केवल यह नहीं कि सरकार कितना कर लगाती है, बल्कि यह है कि देश में ईंधन की उपलब्धता बनी रहे, कीमतों पर अनावश्यक दबाव न बढ़े और संकट का बोझ आम नागरिक पर न्यूनतम पड़े।

चुनौतियों के बीच नई आर्थिक शक्ति बनते एफटीए

डॉ. जयंतीलाल भंडारी

यकीनन 20 अक्टूबर, विजयादशमी का दिन भारत के मुक्त व्यापार समझौतों (एफटीए) के सुनहरे अध्याय में भारत-न्यूजीलैंड एफटीए के लागू होने के दिवस के रूप में ऐतिहासिक बन गया है। इस एफटीए के मद्देनजर कस्टम टैरिफ नियम, 2026 की अधिसूचना के द्वारा 20 अक्टूबर से भारत और न्यूजीलैंड के बीच आयात-निर्यात प्रक्रिया को बेहद सरल और पारदर्शी बना दिया गया है। यह एफटीए भारत के आर्थिक इतिहास में एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर साबित होगा, जिसका मुख्य उद्देश्य अगले पांच वर्षों में दोनों देशों के द्विपक्षीय व्यापार को दोगुना करना है।

भारत और न्यूजीलैंड के बीच 27 अप्रैल 2026 को हस्ताक्षरित यह व्यापार समझौता केवल वस्तुओं की खरीद-बिक्री तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सेवा क्षेत्र और श्रम-गहन उद्योगों के लिए अवसरों के नए द्वार खोलता है। इस समझौते के तहत न्यूजीलैंड भारतीय वस्तुओं की सभी श्रेणियों पर सीमा शुल्क पूरी तरह समाप्त कर दिए हैं।

उल्लेखनीय है कि भारत और न्यूजीलैंड के बीच 27 अप्रैल 2026 को हस्ताक्षरित यह व्यापार समझौता केवल वस्तुओं की खरीद-बिक्री तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सेवा क्षेत्र और श्रम-गहन उद्योगों के लिए अवसरों के नए द्वार खोलता है। इस समझौते के तहत न्यूजीलैंड भारतीय वस्तुओं की सभी श्रेणियों पर सीमा शुल्क पूरी तरह समाप्त कर दिए हैं, जिससे भारतीय निर्यातकों को न्यूजीलैंड के बाजार में सीधी प्रतिस्पर्धी बढ़त मिलेगी और घरेलू विनिर्माण क्षेत्र को अभूतपूर्व प्रोत्साहन प्राप्त होगा। इस ऐतिहासिक समझौते से भारत के प्रमुख क्षेत्रों जैसे स्वास्थ्य, कृषि, तकनीक और श्रम-गहन उद्योगों को व्यापक स्तर पर



लाभ मिलने की उम्मीद है। भारत के लिए सीमा शुल्क समाप्त होने से न्यूजीलैंड में भारतीय जेनेरिक दवाओं, जीवन रक्षक औषधियों और अत्याधुनिक चिकित्सा उपकरणों की पहुंच सस्ती और सुलभ हो जाएगी। इसके अलावा, प्रसंस्कृत कृषि उत्पाद, मसाले, चाय और जैविक उत्पादों के लिए न्यूजीलैंड का बाजार पूरी तरह खुल जाएगा। वहीं दूसरी ओर, आईटी विशेषज्ञों, शोधकर्ताओं और छात्रों के लिए काम और



अध्ययन के नए अवसर बनेंगे, जबकि कपड़ा, चमड़ा और इंजीनियरिंग जैसे एमएसएमई उद्योगों को बल मिलने से देश के भीतर बड़े पैमाने पर रोजगार सृजित होंगे।

गौरतलब है कि न्यूजीलैंड से पहले, 15 जुलाई से लागू हुआ भारत-ब्रिटेन व्यापक आर्थिक एवं व्यापार समझौता भारत की आर्थिक कूटनीति के लिए एक युगांतरकारी मोड़ सिद्ध हो चुका है। जिस ब्रिटेन ने कभी भारत पर शासन किया था, आज उसी की अर्थव्यवस्था का भारत एक मजबूत और रणनीतिक साझेदार बनकर उभरा है। वर्तमान में दोनों देशों के बीच वस्तुओं और सेवाओं का कुल व्यापार 55 से 60 अरब डॉलर के बीच है, जिसे वर्ष 2030 तक 100 अरब डॉलर तक ले जाने का लक्ष्य तय किया गया है। इस समझौते के तहत ब्रिटेन जाने वाली लगभग 99 प्रतिशत भारतीय वस्तुओं पर शून्य सीमा शुल्क लागू किया गया है, जिससे ब्रिटिश बाजार में भारतीय उत्पाद काफी प्रतिस्पर्धी हो गए हैं।

भारत-ब्रिटेन समझौते की एक और बड़ी उपलब्धि सेवा क्षेत्र और सामाजिक सुरक्षा के मोर्चे पर मिली रणनीतिक राहत है। भारतीय आईटी विशेषज्ञों, डॉक्टरों, वित्तीय विश्लेषकों और इंजीनियरों के लिए ब्रिटेन में कार्य करना अब पहले से कहीं अधिक सुलभ और पारदर्शी हो गया है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि एक ऐतिहासिक सामाजिक सुरक्षा समझौते के तहत भारतीय पेशेवरों को ब्रिटेन में रहने के दौरान वहां नेशनल इंश्योरेंस योगदान देने के बाद भारत लौटने पर दोबारा सामाजिक सुरक्षा कर नहीं देना पड़ेगा। ध्यान देने योग्य बात यह है कि पिछले 5 वर्षों में भारत ने 38 विकसित देशों को शामिल करते हुए 9 महत्वपूर्ण एफटीए किए हैं। भारत ने दुनिया के प्रमुख देशों एवं आर्थिक ब्लॉकों के साथ कई दूरगामी एफटीए किए हैं, जिनसे देश को महत्वपूर्ण आर्थिक, औद्योगिक और सामरिक लाभ प्राप्त हुए हैं।

पहले प्रमुख समझौते के तहत भारत-यूएई सीईपीए (मई 2022) में यूएई ने भारत के लगभग 97 प्रतिशत टैरिफ लाइनों पर शून्य सीमा शुल्क (जीरो ड्यूटी एक्सेस) की सुविधा प्रदान की है। इसके फलस्वरूप वस्त्र, रत्न एवं आभूषण (जेम्स एंड ज्वेलरी), चमड़ा और इंजीनियरिंग उत्पादों के निर्यात में भारी उछाल आया है तथा



द्विपक्षीय व्यापार 100 अरब डॉलर के पार पहुँच गया है। इसके अलावा, भारत-मॉरीशस सीईसीपीए और ओमान सीईपीए ने अफ्रीकी महाद्वीप एवं पश्चिम एशिया में भारतीय कंपनियों तथा सेवाओं के निर्यात को नया आधार दिया है। भारत-ऑस्ट्रेलिया ईसीटीए (दिसंबर 2022) के माध्यम से ऑस्ट्रेलिया ने भारत के श्रम-गहन क्षेत्रों (लेबर-इंटेन्सिव सेक्टर्स) जैसे टेक्सटाइल और खेल सामान को तत्काल शुल्क-मुक्त बाजार पहुँच दी है। वहीं, भारत को विनिर्माण (मैन्युफैक्चरिंग) के लिए ऑस्ट्रेलियाई कोकिंग कोल, लिथियम और तांबे जैसे सस्ते व आवश्यक कच्चे माल की उपलब्धता सुनिश्चित हुई है, जिससे भारतीय उद्योगों की लागत घटी है। इसके साथ ही, भारतीय स्नातकों के लिए 2 से 4 वर्ष का पढ़ाई के बाद काम करने का वीजा (पोस्ट-स्टडी वर्क वीजा) मिलना आसान हुआ है। स्विट्जरलैंड और नॉर्वे जैसे देशों के साथ भारत-ईएफटीए समझौते के तहत भारत के इतिहास में पहली बार अगले 15 वर्षों में 100 अरब डॉलर के प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफडीआई) और 10 लाख प्रत्यक्ष रोजगार की प्रतिबद्धता शामिल की गई है।

इसके अतिरिक्त, भारत और यूरोपीय संघ (ईयू) के बीच दिसंबर 2026 में औपचारिक रूप से मुक्त व्यापार समझौते पर हस्ताक्षर होने जा रहे हैं। लगभग दो दशकों की लंबी वार्ताओं और वैश्विक व्यापारिक बदलावों के बाद यह समझौता दोनों अर्थव्यवस्थाओं के रणनीतिक संबंधों में एक ऐतिहासिक मील का पत्थर साबित होगा। यह समझौता केवल माल और सेवाओं के आयात-निर्यात तक सीमित नहीं है, बल्कि आपूर्ति श्रृंखलाओं की मजबूती, हरित प्रौद्योगिकी, स्वच्छ ऊर्जा और डिजिटलीकरण में द्विपक्षीय निवेश को बढ़ावा देगा।

वैश्विक आर्थिक अनिश्चितताओं के दौर में भारत और 27 देशों के यूरोपीय संघ के बीच यह साझेदारी दोनों पक्षों को आत्मनिर्भरता और आर्थिक मजबूती प्रदान करेगी। जहां अमेरिका के साथ व्यापार समझौता का पहला चरण लगभग अंतिम रूप ले चुका है, वहीं कनाडा, आसियान, दक्षिण अफ्रीका, इजरायल आदि देशों के साथ एफटीए वार्ताएं प्रगति पर हैं।

निश्चित रूप से भारत की मुक्त व्यापार समझौतों की डगर काफी तेजी से आगे बढ़ रही है, जिससे देश निर्यात का वैश्विक केंद्र बनता जा रहा है। विश्व भर में पश्चिमी देश अब 'चीन से इतर' आपूर्ति श्रृंखला विविधीकरण की नीति पर काम कर रहे हैं, ऐसे समय में भारत के एफटीए देश को एक वैश्विक, विश्वसनीय और रणनीतिक सप्लाई चेन हब के रूप में स्थापित कर रहे हैं। हालांकि, इन एफटीए का पूर्ण लाभ उठाने के लिए भारतीय उद्योगों को विदेशी बाजारों के सख्त स्वास्थ्य और तकनीकी मानकों का पालन करना होगा तथा गुणवत्ता और पैकेजिंग में सुधार करना होगा। उम्मीद करें कि भारत के एफटीए का नया व्यापारिक ढांचा वर्ष 2047 तक भारत को एक सशक्त, समृद्ध और 'विकसित राष्ट्र' बनाने के सपने को साकार करने में सबसे बड़ा रणनीतिक आर्थिक हथियार सिद्ध होगा।

Rajasthan's 'Sarpanch Pati' problem

Neeraj Bunkar

Few terms in rural Rajasthan need less explanation than *sarpanch pati*. No law recognizes this designation, yet every village knows what the term means. He is the husband of a woman elected as a sarpanch the man who campaigns on behalf of the sarpanch, speaks to officials and assumes the authority of the office himself.

Currently, Rajasthan is in the middle of a four-phase panchayat election. Sarpanch and ward panch voting is scheduled for 25 October, 31 October, 6 November and 16 November, with results declared the same evening each time. The second phase has been completed. I have been watching campaigns in my own village and elsewhere in the state, and the pattern is hard to miss. The faces on election banners belong to husbands, sons, fathers-in-law and, occasionally, fathers. They lead door-to-door campaigns and ask for votes. The actual woman candidate for the positions reserved for women is either absent or, when present, veiled and lost in a group of women standing in the background. Supporters wear T-shirts bearing



her male relative's photograph.

The messaging is carefully constructed. Posters combine promises of development with images of men presented as educated, hardworking and

committed to their villages. Reels, Bollywood music, Rajasthani songs and AI-generated imagery reinforce this male-centred political persona. The woman whose election is at stake becomes almost incidental to her own campaign.

A problem the state has named many times

None of this is news to the State Election Commission. In 2015 the prime minister publicly urged an end to the influence of husbands of women sarpanches, and in July 2023 an NGO, the Mundona Rural Development Foundation, brought the matter before the Supreme Court. The court chose not to take up the petition, observing that it offered no remedy of its own, and told the petitioner to approach the Union Ministry of Panchayati Raj.

The ministry went on to form an advisory committee, headed by a retired IAS officer, Sushil Kumar. It was set up to look at proxy participation and to find ways of making women representatives genuine leaders. The committee submitted its report in February 2025. As summarized in the press, the report recommended that states legislate heavy punishments, including disqualification of proven proxies and criminal complaints where fraud is involved. It also suggested ombudspersons for women representatives, complaint cells in every district, filming of swearing-in ceremonies, yearly social audits and a buddy system in which seasoned women leaders guide newcomers. The same report describes how proxies work in practice: turning up at meetings they have no right to attend, using a woman's official seal, instructing officials by word of mouth and holding the Panchayat purse strings in the



name of assisting the wife as she carries out her household duties.

The National Human Rights Commission has asked states to report on the practice, and in March 2026 the Union Ministry of Panchayati Raj ran an awareness drive titled “Say No to Proxy Sarpanch” that began on International Women's Day. There is a catch, and it matters for Rajasthan. The Centre's stated position is that questions about women representatives' independence in decision-making fall under the purview of the states. So, the most important recommendations depend on state laws and the state's election machinery. An awareness campaign in March counts for little if, in October, the rules and routines of the campaign allow a woman candidate to vanish from her own election. The scale is considerable. India has roughly 2.63 lakh panchayats and 32.29 lakh elected representatives, and 46.6 per cent of them are women. That is a vast number of women whose formal authority may in practice rest with someone else.

'Are you joking? Where will she go?'

Reservation has changed who can contest these seats. It has not necessarily changed whose face they associate with the sarpanch in their minds. When I suggested to people in my village that the woman candidate should come forward, speak to voters and lead her own campaign, the response was often accompanied by a light laugh: “Are you joking? Where will she go?” That question has stayed with me. The objection was not necessarily about the woman's ability to do the job. It was about her place in public life. The sarpanch is imagined as someone who moves freely, meets officials, addresses gatherings and deals with people

outside the home. In this imagination, that person is a man. The husband is therefore not always seen as someone taking over his wife's office. He is treated as the person who naturally belongs there. This is why calling the rule on proxies a loophole only goes so far. It is less a trick played on the rules, more a habit of mind that remains beyond the ambit of rules.

The educated proxy

What troubles me further is that this practice is not confined to men without formal education. Among those projecting themselves as the village's next generation of leaders are educated young men who describe themselves as capable, committed and ready to bring change. Their entry into local politics might ordinarily be welcomed as a sign of generational change. Yet education does not necessarily unsettle the gender hierarchy that structures these campaigns. These men speak of equality, fraternity, development and giving their villages a distinct identity. But they struggle with a more immediate task: allowing their wives, mothers and daughters to participate in politics in their own right. They want to be recognized as agents of change while the women closest to them are denied the same recognition.

An arrangement that feeds off society

The problem is not simply that men have found a way around

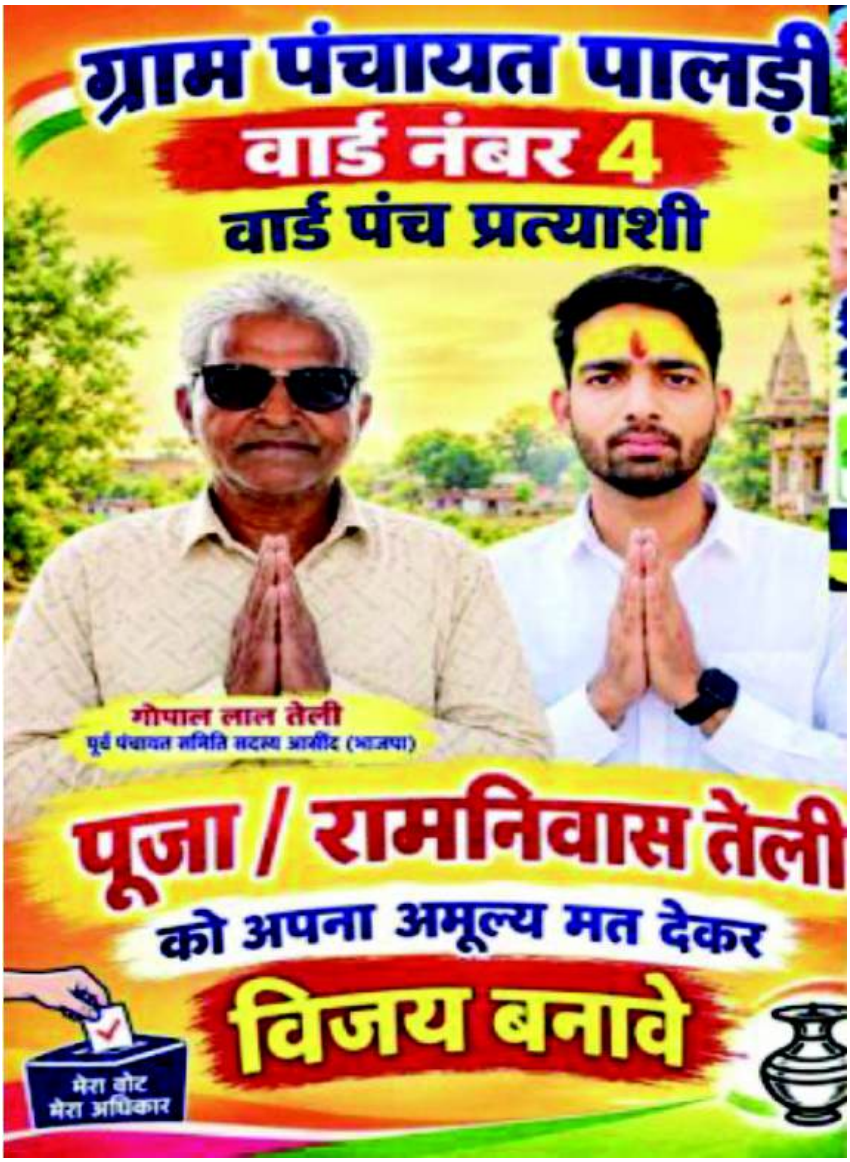

women's reservation. It is that male authority remains so deeply embedded that even a policy designed to change local government can be absorbed into existing family hierarchies. A woman who does not appear prominently in campaign material, speak at public meetings or meet voters independently has fewer opportunities to establish her own political identity. Her limited public presence can then be used to justify her husband's dominance. The rotation of reserved seats may reinforce this tendency when families treat a woman's term as an opportunity to retain political influence rather than as the beginning of her independent political career. Political parties, local officials and voters also

legitimize male proxies whenever they address them instead of the elected woman. The question is not merely whether a woman has won the election, but whether institutions recognize her as the person to whom the office belongs.

Why this is not a technicality

It is tempting to dismiss all this as a matter of optics. The evidence suggests otherwise. The best-known study of political reservation for women in India, by Raghabendra Chattopadhyay and Esther Duflo, looked at village councils in Birbhum in West Bengal and Udaipur in Rajasthan. Seats to be reserved for women are randomly selected, hence any difference in priorities of the councils is purely due to the presence of women ensured by reservation. Councils headed by women made investment choices based on what women said they needed. In Rajasthan, women's complaints were mostly about drinking water, and councils reserved for women put more money into water supply and less into roads.

Those decisions and actions were courtesy of women who actually held and exercised their office. If the person who decides, negotiates and signs is the husband, villages may lose precisely what reservation was meant to deliver. That is why representation and power are not the same thing. The number of women elected tells us who holds the formal position. It does not tell us who makes decisions, negotiates with officials or speaks on behalf of the village. None of this is an argument against political reservation. Without it, many women would not have had the opportunity to enter local government. It is the first step towards empowering women.

Who has to change

Responsibility for change cannot rest on women alone. If



families prevent women from appearing in public, officials routinely address their husbands, and voters assume that the man beside a candidate is the real authority, a reserved seat cannot deliver its full potential. First, parties and election authorities must recognize the distinction between voting for a woman candidate and presenting her male relative as the actual leader. At a minimum, the State Election Commission can mandate that candidates appear in their own campaign material and at nomination events, and insist that parties promote their women candidates in their own right.

Second, the State should act on what its own advisory committee proposed instead of stopping at awareness drives: independent complaint channels, social audits, penalties with teeth, and clear instructions that officials deal only with the elected woman. Third, training and mentoring must begin before polling day, not after it. The ministry's Sashakt Panchayat-Netri Abhiyan (Campaign for Empowered Panchayat Leaders) had, according to one report, trained 64,863 women representatives by December 2025. That is a fraction of the more than 14 lakh women who sit in panchayats.

The poster and the voice

To sum up, the problem runs deeper than election rules. A law can reserve a seat, but it cannot by itself change what a family considers appropriate for a woman or what a village accepts as normal. That slower work will not be completed by any one election. Until the woman is the face on the poster, the voice at the meeting and the person officials turn to, the promise of representation stays incomplete. A political position does not guarantee voice. Electing a woman is not the same as creating a space in which she can lead.

जगत पाठक पत्रकारिता संस्थान, भोपाल



जगत पाठक पत्रकारिता संस्थान वर्ष 1998 से सतत् रूप से संचालित हो रहा है। इस संस्थान से अध्ययन कर छात्र-छात्राएं प्रिंट व इलैक्ट्रॉनिक मीडिया में अच्छे पदों पर पदस्थ हैं। साथ ही साथ शासकीय पद पर आसीन होकर इस संस्थान को गौरवान्वित कर रहे हैं।

: विषय :

मास्टर ऑफ आर्ट जर्नलिज्म (2 वर्ष)

बी.एस.सी. मास कम्यूनिकेशन (3 वर्ष)

प्रवेश प्रारंभ

संपर्क सूत्र

विजया पाठक (संचालक) - 9826064596

अर्चना शर्मा - 9754199671 संतोष गुप्ता - 9755618891

कार्यालय - कार्पोरेट कार्यालय - एफ 116/17, शिवाजी नगर, भोपाल, म.प्र.

संस्थान - 28, सुरभि विहार कालोनी, कालीबाड़ी, बी.डी.ए. रोड, भेल, भोपाल, म.प्र.

छत्तीसगढ़ शासन

सुशासन के संकल्प से

युवा खेल प्रतिभाओं को मिल रहा सम्मान



ओलिंपिक गेम्स के विजेताओं को

₹3 करोड़

तक की **प्रोत्साहन राशि**

ओलिंपिक गेम्स के विजेताओं को

₹21 लाख

तक की **प्रोत्साहन राशि**



श्री विष्णु देव साय
माननीय मुख्यमंत्री, छत्तीसगढ़

श्री नरेन्द्र मोदी
माननीय प्रधानमंत्री

R.O. No. 13772/29

/ChhattisgarhCMO /DPRChhattisgarh www.dprcg.gov.in

सुशासन से समृद्धि की ओर

छत्तीसगढ़ शासन



बुनियादी विकास से सम्मान तक

पीएम जनमन योजना

बैगा, पहाड़ी कोरवा, अबूझमाड़िया, बिरहोर, पंडो और भुंजिया तक पहुँची **विकास योजनाएं**

- प्रदेश में

67+हजार

PVTG परिवारों को लाभ



श्री विष्णु देव साय
माननीय मुख्यमंत्री, छत्तीसगढ़

श्री नरेन्द्र मोदी
माननीय प्रधानमंत्री

हमसे जुड़ने के लिए QR स्कैन करें

R.O. No. 13772/29

/ChhattisgarhCMO
/DPRChhattisgarh
www.dprcg.gov.in

सुशासन से समृद्धि की ओर